अंक : १३२

अक्तूबर - दिसंबर २०१५

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

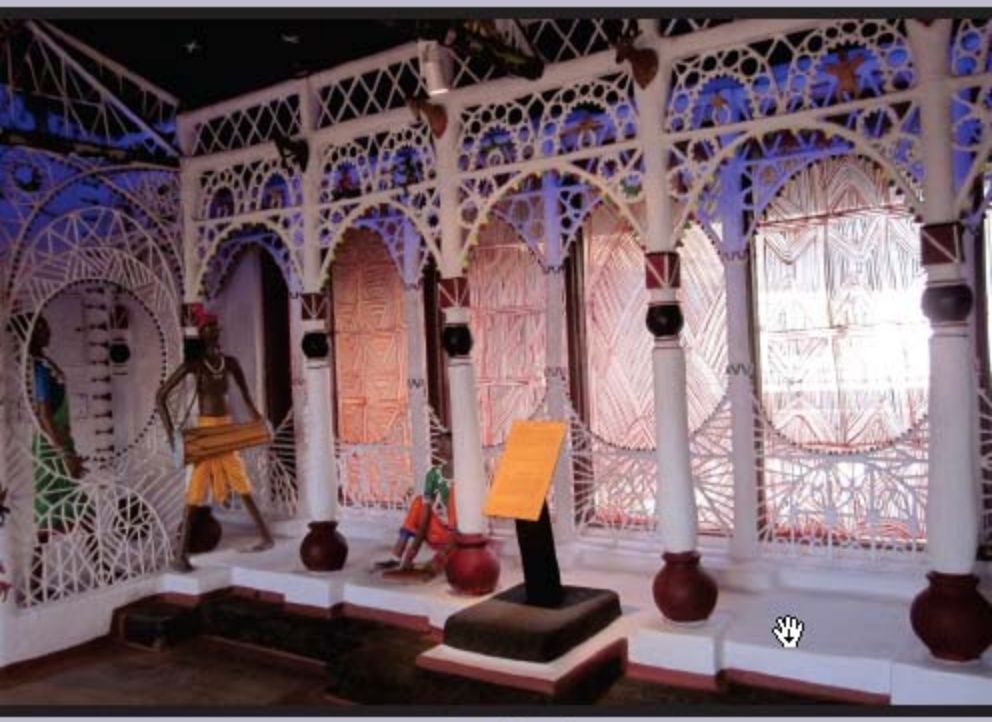

कहानियां

डॉ. पुष्पा सक्सेना • डॉ. रमाकांत शर्मा • राजासिंह

डॉ. लता अग्रवाल • नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

आमने-सामने
नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

सागर-सीपी
सुभाष काबरा

१५ रुपये

अक्तूबर-दिसंबर २०१५
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
अशोक वशिष्ठ
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@yahoo.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। इंतज़ार - **डॉ. पुष्पा सक्सेना**
।।१५।। भीतर दबा सच - **डॉ. रमाकांत शर्मा**
।।२१।। वरदहस्त - **राजासिंह**
।।२९।। इकत्तीस का महीना - **डॉ. लता अग्रवाल**
।।३३।। बिछावन - **नीतू सुदीप्ति "नित्या"**

लघुकथाएं

।।२०।। दौड़ / **मधुदीप**
।।२४।। खेल / **सुरेश सौरभ**
।।३५।। चोर-पुलिस / **योगेंद्र शर्मा**
।।४४।। चुनौती / **ओम प्रकाश बजाज**

कविताएं / गीत / ग़ज़लें

।।२४।। कविता / **डॉ. अमरेंद्र मिश्र**
।।३२।। ग़ज़ल / **चंद्रसेन विराट**
।।३८।। कविता / **शिव डोयले**
।।४४।। ग़ज़ल / **नवीन माथुर "पंचोली"**
।।४४।। गज़ल / मंजुला उपाध्याय "**मंजुल**"

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३९।। "आमने-सामने" / **नीतू सुदीप्ति "नित्या"**
।।४५।। "सागर-सीपी" / **सुभाष काबरा**
।।५०।। "बाइस्कोप" **(सविता बजाज)** / **जावेद सिद्दीकी**
।।५२ ।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : म. प्र. आदिवासी संग्रहालय, भोपाल
चित्रकार : डॉ. अरविंद

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह वर्ष २०१५ का अंतिम अंक है. "कथाबिंब" का यह १३२ वां अंक पाठकों तक जनवरी के पूर्वार्ध में पहुंचेगा. इस प्रकार धीरे-धीरे ही सही, कुछ सीमा तक पत्रिका का प्रकाशन नियमित हो सका है. पिछले १५-२० सालों से पत्रिका के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं की गयी. किंतु हर अंक के साथ छपाई का व्यय निरंतर बढ़ता रहा है. इस कारण विवश होकर, वर्ष २०१६ के प्रथम अंक के साथ एक प्रति का मूल्य २० रु. किया जा रहा है, त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क २०० रु. तथा आजीवन शुल्क ७५० रु. होगा. पूर्व में बने आजीवन सदस्यों को अतिरिक्त शुल्क भेजने की आवश्यकता नहीं है. सभी को पत्रिका पूर्ववत मिलती रहेगी.

वर्ष २०१५ के चारों अंकों में, कुल मिलाकर २० कहानियां प्रकाशित हुई हैं. *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१५"* के लिए अभिमत भेजने हेतु"मत-पत्र" पृष्ठ ५६ पर छपा है. पाठकों से निवेदन है कि मत-पत्र के माध्यम से, पोस्ट कार्ड अथवा मेल द्वारा, अभिमत का अपना क्रम भेजें. पाठकों से अनुरोध है कि कृपया अधिक से अधिक संख्या में इस आयोजन में भाग लें."कथाबिंब" ही एक मात्र पत्रिका है जो पाठकों के सहयोग से जनतांत्रिक तरीक़े से लेखकों को पुरस्कृत करती है. वर्ष के सभी अंक आप "कथाबिंब" की वेबसाइट पर भी पढ़ सकते हैं. वेबसाइट के अलावा "कथाबिंब" को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है. आवरण पर नामित लेखकों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें. इससे आपकी रचनाओं की"पहुंच" का दायरा और व्यापक होगा. यह विदित ही है कि"कथाबिंब" मुंबई की *"संस्कृति संरक्षण संस्था"* के सौजन्य से प्रकाशित होती है. पूरे वर्ष में संस्था जनसामान्य से जुड़े अनेक कार्यक्रम आयोजित करती है. ३१ जनवरी २०१६ को *"डिज़ीटल इंडिया पहल में हिंदी व अन्य भाषाओं की भूमिका"* विषय पर "सी-डेक" के संयुक्त तत्वावधान में संस्था एक अर्ध-दिवसीय संगोष्ठी कर रही है. संगोष्ठी में भाग लेने के इच्छुक हमसे संपर्क करें. एक अन्य सूचना : अगले अंक से मुंबई की रचनाकार, विदुषी डॉ. राजम नटराजन पिल्लै "कथाबिंब" से जुड़ रही हैं. अवश्य ही पत्रकारिता के क्षेत्र में आपके अनुभवों से पत्रिका को लाभ मिलेगा.

●

अब कुछ इस अंक की कहानियों के बारे में – पहली कहानी *"इंतज़ार"* की लेखिका डॉ. पुष्पा सक्सेना अमेरिका निवासी हैं. "कथाबिंब" के पाठक आपकी कई कहानियां पढ़ चुके हैं. बरसों अमेरिका में रहने के बाद भी प्रवासी परिवार के सदस्य अपनी संस्कृति और सभ्यता को नहीं छोड़ना चाहते. लाइलाज़ कैंसर से ग्रसित इरा पहले अपनी बीमारी छुपाती है फिर अपने पति और बच्चों को हिम्मत बंधाती है कि उसके न रहने पर दुख नहीं करना है. *"भीतर दबा सच"* के लेखक डॉ. रमाकांत शर्मा भी "कथाबिंब" के नियमित लेखक हैं. भाभी ने सौतेले देवर को बोझ समझ कर हमेशा नीचा दिखाया लेकिन पति के न रहने पर मज़बूर होकर उसी देवर के पास आना पड़ा. तो अब कैसे कहें कि कहीं और कोई ठिकाना नहीं है. राजासिंह की *"वरदहस्त"* पारिवारिक संबंधों की कहानी है. बड़े भाई मरणासन्न हैं. पढ़ाई-लिखाई कभी की नहीं, न ही पुश्तैनी पंडिताई का काम रास आया. हां, दबंगई में वे सबसे आगे रहते थे. छोटा भाई मलय उनकी छत्रछाया में पढ़ लिखकर आगे बढ़े इसके लिए कुछ भी करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे. मलय भी आज सब कुछ करने के लिए तत्पर है किंतु वह अंततः दादा को बचा नहीं पाया. आज यह आम समस्या है कि बच्चे अपने वृद्ध माता-पिता को साथ नहीं रखना चाहते. अगली कहानी *"इकत्तीस का महीना"* (डॉ. लता अग्रवाल) की कांता ने पति के न रहने पर दोनों लड़कों के लालन-पालन में कोई कसर नहीं रखी. बड़े चाव से घर में बहुएं आयीं पर उन्होंने जल्दी ही अपना चूल्हा अलग कर लिया. महीने में पंद्रह दिन एक बहू सास को खाना खिलाती थी और पंद्रह दिन दूसरी बहू. अगर महीना ३१ का हुआ तो कांता उस दिन उपवास रख लेती थी, यही एक आसान उपाय था. अपने आत्मकथ्य के माध्यम से नीतू सुदीप्ति "नित्या" पाठकों से रूबरू हैं. अपनी कहानी *"बिछावन"* में नीतू ने बड़ी मार्मिकता से कामवाली बिमली के संघर्ष को उजागर किया है. बिमली अपने पति को बेहद चाहती है. बिमली के बताने पर घर की मालकिन गौतमी सुहागिनों जैसा श्रंगार करने लगी थी. एक दिन बिमली के काम पर न आने से गौतमी चिंतित हो जाती है. जो कारण सामने आता है उसकी कल्पना करना किसी के लिए भी असंभव था.

●

संसद का एक और अधिवेशन बिना किसी विशेष काम-काज़ के ख़तम हो गया. सरकार का कहना है कि कॉन्ग्रेस अनावश्यक मुद्दे उठाकर सहयोग नहीं करना चाहती केवल उसे रोज़ हंगामा करना है, किसी भी मुद्दे पर वह बहस नहीं करना चाहती. कॉन्ग्रेस का कहना है कि नयी सरकार को अनुभव नहीं है, उसे संसद चलाना नहीं आता. इस घींगामुश्ती में नुकसान देश का होता है. संसद की कार्यवाही ज़ारी रखने के लिए एक मिनट में २.५ लाख रुपयों का ख़र्चा आता है. यानी एक घंटे में १५ करोड़ और पूरे दिन में लगभग १५० करोड़. यदि अधिवेशन के दिनों की संख्या २० मान लें तो

३००० करोड़ का व्यय! दरअसल १३१ साल पुरानी कॉन्ग्रेस अपनी हार को पचा नहीं पा रही है. लोकसभा चुनाव में उसके मात्र ४४ (अब ४५) सांसद चुनकर आये. यह संख्या विपक्ष के नेता का दर्जा दिलाने के लिए भी पर्याप्त नहीं थी. २०१४ के लोकसभा चुनावों के परिणाम कई मायनों में अभूतपूर्व थे. पिछले ३० सालों में किसी दल या गठबंधन को इतना बहुमत नहीं प्राप्त हुआ. दस साल के कॉन्ग्रेस के राज्य से त्रस्त आयी जनता के सामने एक स्पष्ट विकल्प दिखाई दे रहा था. धर्म और जाति से ऊपर उठकर अन्य लोगों के अलावा युवाओं ने मोदी को बढ़-चढ़कर वोट दिया. लेकिन दिल्ली के चुनाव के समय अल्पसंख्यकों को लगा कि कहीं ग़लती हो गयी और जो वोट सामान्यतया कॉन्ग्रेस को जाता रहा है वह पूरा का पूरा "आप" को मिला.

महाराष्ट्र, राजस्थान, हरियाणा, आंध्र प्रदेश और जम्मू व कश्मीर की सफलता के बाद भाजपा की नेतृत्व वाले राजग को लगा कि बिहार को जीतना मुश्किल नहीं होगा. लेकिन यहां एक बार फिर जातीय समीकरण अन्य सभी कारकों के आगे निकल गया. दादरी, पाटीदार आंदोलन, मोहन भागवत के बयान या असहिष्णुता-सहिष्णुता की बहस ने भी कुछ सेंध अवश्य लगायी होगी किंतु मुख्यतः लालू और नीतीश का वोट बैंक एकजुट होना कारण रहा. फ़ायदा कॉन्ग्रेस को मिला. आमसभा के चुनाव के समय मोदी के चुनाव-प्रचार का पूरा कार्य बिहारी बाबू प्रशांत किशोर के हाथों में था. प्रशांत ही मोदी के रथ के सारथी थे. लेकिन अमित शाह ने प्रशांत किशोर का पत्ता काट दिया. इन्हीं प्रशांत किशोर ने बिहार में महागठबंधन के प्रचार की बागडोर संभाली. गुजरात की तरह ही यहां भी प्रशांत ने हर सीट का "माइक्रो मैनेज़मेन्ट" किया. पूरा प्रचार नीतीश केंद्रित हो गया - *"हर घर दस्तक"* और *"इस बार फिर नीतीशे"* नारों ने जादुई काम किया. हमारी समझ से मोदी द्वारा बिहारियों के "डीएनए" पर कटाक्ष करना भी काफ़ी उल्टा पड़ गया. क्योंकि किसी भी वर्ग या समुदाय की अस्मिता को चोट पहुंचाकर आगे नहीं बढ़ा जा सकता.

इस पर भी ग़ौर करना चाहिए कि बिहार के चुनाव ख़तम होते ही "बुद्धिजीवियों" ने पुरस्कार लौटाना बंद कर दिया. असहिष्णुता को लेकर अब कोई चिंतित नहीं है. असहिष्णुता का झगड़ा पूना की फ़िल्म व टेलीविज़न इंस्टीट्यूट से शुरू हुआ. यदि कोई मार्क्सवादी इसका चैयरमैन बना दिया जाता तो किसी को कोई दिक्कत नहीं होती. ज़ेहन में दो सवाल आते हैं कि इस संस्थान का अध्यक्ष नियुक्त करना क्या सरकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं है? दूसरा यह कि क्या सारे संस्थानों के अध्यक्षों, निदेशकों, शिक्षकों की नियुक्ति विद्यार्थियों की रजामंदी से होनी चाहिए? इसी संदर्भ में —टी. वी. पर पेप्सी का एक विज्ञापन आता है ... फ़िल्म व टेलीविज़न इंस्टीट्यूट के कुछ छात्र सत्याग्रह कर रहे हैं, छात्रों की दाढ़ी बढ़ी हुई है. इधर पेप्सी की एक गाड़ी आकर पास खड़ी होती है. एक छात्र प्यास बुझाने के लिए गटागट पेप्सी लेकर पीने लगता है. पूछने पर कहता है, "पेप्सी थी पी गया." पूरे आंदोलन पर इससे सटीक व्यंग नहीं हो सकता.

देश में अपराधों की संख्या बढ़ी है. दिल्ली तो जैसे अपराधों की राजधानी हो गयी है. अख़बार और समाचार बुलेटिन बलात्कारों के समाचारों से भरे रहते हैं. ज़रा-ज़रा सी बात में रास्ता रोको, वाहनों में आग लगा देना. हत्या, अपहरण, गोली चला देना. अपराध पहले भी होते रहे हैं किंतु आज हर किसी के पास कैमरे वाला मोबाइल फ़ोन है, झट बिना जांच-परख के प्रत्येक घटना "ब्रेकिंग न्यूज़" बन जाती है. कुछ वर्ष पूर्व मैं दुबई घूमने गया था. वहां ग़ौर किया कि अख़बार में अपराधियों के नाम या वे किस देश के, धर्म या जाति के हैं इसका उल्लेख नहीं होता. नाम के स्थान पर समाचार में अपराधी के मात्र पहले दो अक्षरों का उल्लेख रहता है ... "सी. जे. और पी. के. को पुलिस ने कल चोरी करते रंगे हाथ पकड़ा और आगे की कार्यवाही के लिए जेल में डाल दिया." दोनों दलित थे, हिंदू या अल्पसंख्यक थे, भारतीय, पाकिस्तानी या फिर चीनी थे कुछ मालूम नहीं पड़ता. यदि हमारे देश में भी इसी तरह की संहिता लागू की जाये तो कई मामलों में जातीय और धार्मिक उन्माद और दंगों से बचा जा सकता है. इसका एक सकारात्मक परिणाम यह भी हो सकेगा है कि राजनीतिक दल अपनी रोटियां नहीं सेंक पायेंगे.

●

एक और साल गुज़रने को है. नया साल नयी चुनौतियां लेकर आयेगा. अगर आप निराशावादी हैं तो गिलास आधा खाली है और आशावादी तो गिलास आधा भरा है. भूकंप, अतिवृष्टि, बाढ़ या सूखे के सामने हमारा वश नहीं चलता. लेकिन आज पूरे विश्व के सामने "आईएसआईएस" का ख़तरा महाविनाश के रूप में दिख रहा है. इससे सब देशों को मिलकर निपटना होगा तभी पार लग सकेगा. जहां तक भारत का प्रश्न है राष्ट्र हित में सभी राजनीतिक दल कम से कम कुछ समय तक आपसी अंतरों को भुलाकर ठोस व कारगर नीति अपनायें, तभी आतंकवादी और उग्रवादी गतिविधियों पर अंकुश लग सकता है. इतने बड़े देश के चप्पे-चप्पे पर चौबिसों घंटे सतर्कता से निगरानी रखना मात्र सरकारी एजेन्सियों के लिए संभव नहीं है. यह सुखद है कि अनेक मुस्लिम संघठनों ने "आईएसआईएस" की गतिविधियों की भर्त्सना की है.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१५ अंक मिला, इस अंक में डॉ. गायत्री कमलेश्वर की 'अतीत की शाख पर' बेहद अच्छी कहानी है, वे इतनी समर्थ कथाकार थीं, यह जानकर ख़ुशी हुई. शायद कमलेश्वर जी के विराट व्यक्तित्व की वजह से गायत्री जी का कथाकार उभरकर सामने नहीं आ सका... नारी मन की इतनी अच्छी-मज़बूत कहानी कम कथाकारों के हिस्से में दर्ज़ है, 'पहाड़ों की नर्म धूप' भी अद्‌भुत कहानी है. नीरजा हेमेंद्र जी को इसके लिए बधाई और बृजमोहन की कहानी 'कोटर वाले कक्का' तो कभी नहीं भूलने वाली कहानी है. अशोक गुजराती की कहानी 'भगदड़' भी इस अंक की एक मज़बूत कहानी है. 'आमने-सामने' में उनके ज़द्दोजेहद को पढ़कर उनके संघर्ष के बारे में जानकारी मिली. कम-व-बेश हरेक लेखक का यह बुनियादी जीवन होता है, तभी तो वह सृजनशील होता है. यह लेखक की मज़बूती है. 'सागर-सीपी' में दिनेश प्रभात जी ने खुलकर बड़ी बेबाक़ी से अपनी बेबसी, दुख, प्रेम, सृजनशीलता, अपनों की नफ़रत को उजागर किया है. उनकी ये पंक्तियां वाकई उनके जीवन के प्रेम को बयान करती हैं —

"पांव पड़े ज्यों ही वसंत के, टहनी लचक गयी,
दिल की बात कली के मुंह पर आकर अटक गयी."

बहुत ख़ूब! मेरा दुर्भाग्य कि उन्हें बहुत कम पढ़ पाया हूं और यह भी दुख है कि भोपाल-विश्व हिंदी सम्मेलन में जाकर भी उनसे नहीं मिल पाया. जबकि 'अशोक गार्डन' से हमारा गुज़र भी हुआ....

- सेराज खान बातिश
३-बी, बंगाली शाह वारसी लेन, खिदिरपुर, कोलकाता-७०००२३.

▸▸ 'कुछ कही, कुछ अनकही' हर बार मन को छू लेती है किंतु इस बार (जुलाई-सितंबर २०१५ अंक) तो ऐसे लगा जैसे कहीं इन्स्ट्यूशन ही कार्यरत हुआ हो, वही सारे मुद्दे जो चैन नहीं लेने देते. रात-दिन मन मस्तिष्क को उद्वेलित किये रहते हैं, और शायद हर सोचने वाले की चिंता का कारण बने हुए हैं आपने अपने इस कॉलम में शामिल किये हैं. ८६ वर्ष की लंबी आयु में अंग्रेज़ों के राज से अब तक मन इतना विचलित कभी नहीं हुआ था जितना आज है. हर ओर घिरता अंधेरा ही अंधेरा नज़र आता है. आज के हालात को देखकर कभी-कभी लगने लगता है कि हमारी सैकड़ों वर्ष की ग़ुलामी का कारण हम स्वयं ही रहे हैं. संभवत: आज़ादी हमें रास नही नहीं आती. देश की स्थिति ऐसी लगती है जैसे बिना मास्टर की सरकारी स्कूल की तीसरे दर्ज़े की क्लास. जो जिसके जी में आता है कर रहा है, बोल रहा है. कोई किसी को रोकने–टोकने वाला नहीं है. न्यूज़ चैनलों के बारे में तो कुछ कहना ही बेकार है. यही दुर्दशा सीरियलों की है. हनुमान की पूंछ की भांति लंबे खिंचते मगर महज़ बक़वास. दर्शकों की रुचि-अरुचि की जैसे उन्हें परवाह ही नहीं. 'सूचना का अधिकार' को धीमा ज़हर दिया जाने लगा है. हर ठीक चलते संस्थान को अव्यवस्थित करने की जैसे मुहिम चलायी जा रही है. न जाने कहां-कहां से कैसे-कैसे लोग ला-लाकर प्रतिष्ठित किये जा रहे हैं. महंगाई ऐसी जो न कभी देखी न सुनी. ये तथाकथित नेता कि जिनकी कार्यवाहियों को देख घिन आती है. एक नागनाथ दूजा सांपनाथ. बाबाओं में अधिकांश ढोंगी और चरित्रहीन. करोड़ों की संपत्ति संजोये हुए. किस-किस दुर्दशा की चर्चा करें. मन बहुत दुखी है. आशा की कोई क्षीण-सी भी किरण किसी ओर से भी दिखायी नहीं देती. ऐसी बेबसी और लाचारी पहले कभी महसूस नहीं की थी. भगवान ही भला करे. कोई चमत्कार घटित हो जाये.

-ओमप्रकाश बजाज
'विजय विला', १६६ कालिंदी कुंज,
अग्रवाल पब्लिक स्कूल के पास, पिपलिहाना,
रिंग रोड, इंदौर-४५२०१८

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१५ अंक पढ़ा. सर्वप्रथम धन्यवाद देना चाहती हूं कि आपने गायत्री कमलेश्वर

की कहानी प्रकाशित की. तत्क्षण मैंने उनकी बेटी ममता त्यागी से भी बातचीत की और धन्यवाद दिया. यक़ीनन गायत्री जी की कहानी द्वारा स्त्री-यंत्रणा और अपने स्पेस के लिए ज़द्दोजेहद करती, एक स्त्री छवि की जिजीविषा समाने आती है. कहानी अपनी संवेदनाओं के साथ पाठकों को बांधे रख सकी है. नीरजा हेमेंद्र की कहानी पहाड़ की संस्कृति या फिर अपने परिवेश की आंचलिकता को लेकर, इतनी संवेदनशील है कि उक्त सारे दृश्य मूर्त्त हो उठते हैं. और कहीं न कहीं कथानक का नयापन, अन्य क्षेत्रों के पाठकों के लिए मुग्धता का कारण बनता है. अन्य कहानियां भी अच्छी लगीं. ख़ासकर बृज मोहन जी की.

लघु-कथाओं में 'क़िताबें' का कहना ही क्या? बहुत सुंदर. 'सुयोग्य लड़की' की छटपटाहट भी हमें विचलित करती है. 'कर्मयोगी' लघुकथा का छद्म हमें कुरेद डालता है. सच्चिदानंद 'इंसान' की ग़ज़ल के तेवर मनभावन हैं. दो गीतों का भी अपना अंदाज़ है, जो कहीं न कहीं पढ़ा ले जाता है.

पुस्तक-समीक्षा स्तंभ के अंतर्गत भी कई नयी पुस्तकों और उनके विवरणों से अवगत हुई. ख़ासकर निरुपमा राय की समीक्षा के तेवर, उनकी कहानी की तरह प्रभावकारी हैं और आपका संपादकीय पूरी तौर पर साहित्यिक पत्रकारिता के यथार्थ स्वरूप से परिचय कराता है. ख़ासकर बिहार के चुनाव का दृश्य तो इस बार ग़ज़ब का रहा. बड़े से बड़े नेताओं का अलोकतांत्रिक शब्दों का प्रयोग, पूरे समाज को ग़लत मैसेज़ देता रहा. उनके संभाषणों में जनता का हित ग़ायब था. कुर्सी फ़रोश की प्रवृत्तियों से हमें घिन आती रही.

- मंजुला उपाध्याय 'मंजुल'

सम्राट चौक, पूर्णियां-८५४३०१ (बिहार).

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१५ अंक मिला. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपके विचारों से सहमत हूं. बिहार के चुनाव और फिर परिणाम हैरान करने वाला है. भाजपा की पोल खुल गयी है. संगठन और आरएसएस के बीच दबाव है. आपसी भितरघात भी है. महंगाई, बेरोज़गारी और आतंकी हमले — मुख्यत: कश्मीर में समस्याएं उत्पन्न कर रहे हैं. केंद्रीय सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए. विपक्ष भी 'केकड़ा-प्रवृत्ति' से ऊपर उठें अन्यथा जनता सब जानती है. आम जनता की चिंता केंद्रीय और राज्य सरकार को होनी ही चाहिए. विकास की बातें ही हों, ऐसा नहीं होना चाहिए, काम भी ज़मीन पर उतरे.

'कथाबिंब' मुख्यत: कहानी प्रधान पत्रिका है. लगातार वर्षों से निकल रही है. हिंदी के लिए यह बड़ी बात है.

डॉ. गायत्री कमलेश्वर की 'अतीत की शाख पर' कहानी शहरी-मध्यमर्गीय परिवार की टूटन और कलह से उपजे झंझावतों से निकली कथा है जहां सीमा पति से अलग रहने लगती है. बेटी मिनी से वह दूर है, जो दु:खदायी है. पति दूसरी शादी कर लेता है. मिनी अब उसी के संग रहती है. शादी के बाद मिनी मां से मिलने आती है. स्टेशन के बाहर खड़ी मां उसे गले लगा लेती है. 'मिनी' उसका जिगर का टुकड़ा था. साथ-साथ चलते हुए दोनों अतीत से भविष्य की ओर बढ़ती हैं. कथा मर्मस्पर्शी है. वहीं, नीरजा हेमेंद्र की 'पहाड़ों की नर्म धूप' पहाड़ी जीवन और शिवांगो की कथा लगी जहां पहाड़ी जीवन से अलग वह रह नहीं सकती थी, नतीजतन, पति उसे छोड़कर कश्मीर जाना तय कर लेता है. शिवांगो आकाशवाणी लेह में कार्यरत है, उसे एक पुत्र भी है. आकाशवाणी के नये निदेशक ने उससे शादी कर ली. अब दोनों बीच का रास्ता निकालकर प्रसन्नचित्त रहने लगे.

बृजमोहन की 'कोटर वाले कक्का' — कक्का ने मोनू को अपना पुत्र मान लिया था और काग़ज़ पर सब कुछ लिख दिया था. मरणोपरांत, मोनू की नौकरी हो गयी और पी. एफ़. के रुपये भी मिल गये. — ग़रीबी मिट गयी थी. कथा सहज और पठनीय हैं. वहीं, सोहन वैष्णव की कहानी 'देवा की वसीयत' नक्सलवाद पर आधारित कथा लगी. जहां नये कलेक्टर रोहन के लाख समझाने के बावजूद देवा उस रास्ते को छोड़ने को तैयार नहीं हुआ. अंतत: मुठभेड़ में उसकी मौत हो जाती है.

डॉ. अशोक गुजराती की 'भगदड़' कहानी भगदड़ के कारणों और साजिशों की पोल खोलती है. अपनी ही साजिश में उलझकर समीर अपनी शब्बु को मौत की गोद में सुला देता है. बुरा करने वालों को बुराई ही मिलती है. वहीं, दिनेश प्रभात से मधु प्रसाद की बातचीत — 'गीत पीड़ा से

मुक्ति का उपक्रम हैं' - ज्ञानवर्धक है. लघुकथाओं में, 'क़िताबें', 'कर्मयोगी' और 'सुयोग्य लड़की' आकर्षित करती हैं.

- कलाधर

नया टोला, लाइन बाज़ार, पूर्णियां (बिहार)

▶▶ 'कथाबिंब' का अंक १३१ (जुलाई-सितंबर २०१५) प्राप्त हुआ. अपने स्तंभ 'बाइस्कोप' में इस बार सविता जी, श्याम बेनेगल को लेकर आयी हैं. मैंने बेनेगल की लगभग सभी कला फ़िल्में देखी हैं, मैं उनकी प्रतिभा से अभिभूत हूं. अच्छा लगा कि सविता बजाज उनकी सभी कला फ़िल्मों में हैं. मैं सविता जी के संपूर्ण फ़िल्मी कैरियर की यही बड़ी उपलब्धि मानता हूं कि उन्होंने बेनेगल के साथ काम किया. सविता जी को बधाई और आभार. 'सागर-सीपी' में दिनेश प्रभात से मधु प्रसाद की बातचीत में यही लगा कि जैसे हमने गीत स्नान किया, गीत में डुबकियां लगायीं. 'आमने-सामने' के अशोक गुजराती की कहानी 'भगदड़' में एक नया आयाम सामने आया कि भगदड़ एक सुनियोजित षड़यंत्र होती है और कि आतंकवाद का एक यह भी रूप हो सकता है. सोहन वैष्णव की कहानी 'देवा की वसीयत' इस अंक की एक और कहानी है जिसका सकारात्मक अंत नहीं है और जिसमें कोई समाधान नहीं है. 'कोटर वाले कक्का' एक दु:खमय कहानी है जिसे बृजमोहन ने सुखांत कर दिया है. कथानायक की यद्यपि अंत में मृत्यु हो जाती है पर वह एक चिर दुखी परिवार को सुखी कर जाता है. नीरजा हेमेंद्र ने कहानी 'पहाड़ों की नर्म धूप' के रूप में एक धैर्यवान प्रेम रचा है. जिसकी नायिका प्रेम तो करती है, पुनर्विवाह भी करती है किंतु पहाड़ और पिता को नहीं छोड़ती जैसे पहाड़ अपनी जगह नहीं छोड़ते. मैदान के नायक को पहाड़ जाना पड़ता है. स्वर्गीय कमलेश्वर की स्वर्गीया पत्नी गायत्री की कहानी 'अतीत की शाख पर' के अंत में सुख है. कृष्ण चंद महादेविया की लघुकथा 'सुयोग्य लड़की' लोककथा है. माधव नागदा की 'कर्मयोगी' प्रदर्शन और कर्म के अंतर को बख़ूबी स्पष्ट करती है. डॉ. कुंवर प्रेमिल ने क़िताबों का हश्र अच्छा नहीं किया. ईश्वर उनकी लघुकथा का हश्र ऐसा न करे.

– हितेश व्यास,

६-ए/कल्पतरु सेरेनिटी, नवरत्न मंगल कार्यालय के सामने, महादेव नगर, मांजरी, पुणे-४१२३०७.

निवेदन

रचनाकारों से

''**कथाबिंब**'' एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी रचनाएं भेज सकते हैं. ई-मेल का पता है : kathabimb@yahoo.com रचना की ''डॉक'' फ़ाइल के साथ ''पीडीएफ'' फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

कहानी

इंतज़ार

✍ डॉ. पुष्पा सक्सेना

'कथाबिंब' की हितैषी एवं नियमित लेखिका

''तेरे लिए एक अच्छी ख़बर है.'' भरसक चेहरे पर मुस्कान लाने की कोशिश करते हुए अमर ने कहा.

''अब भी मज़ाक, अमर?'' मुश्किल से आंखें खोल दर्द के साथ इरा बुदबुदायी.

''मज़ाक नहीं, सच सुन कर ख़ुश हो जाओगी. कल कानपुर से मां-पापा आ रहे हैं.''

''नहीं, उन्हें क्यों बुलाया, अमर?'' पीड़ा से इरा के ओंठ भिंच गये.

''देखना मां की गोद में सिर रखते ही तेरा दर्द भाग जायेगा.'' अमर ने तसल्ली देने की कोशिश की थी.

पिछले तीन हफ़्तों से इरा का दर्द बर्दाश्त के बाहर हो रहा था. सारा बदन दर्द से ऐंठ जाता, उसकी कराहें सुन कर अमर और बच्चों के दिल रो पड़ते, पर इरा के कैंसर की अब अंतिम स्थिति यही थी. डॉक्टरों का दिया समय अब समाप्त हो रहा था. उन्हीं की सलाह पर अमर ने इरा के मां-पापा को बुलाया था. कम से कम अपनी एकलौती बेटी को उसके अंतिम समय में देख तो लें.

''मां की गोद में आंखें खोली थीं, अब बंद आंखें मां कैसे सहेंगी, अमर?'' किसी तरह अस्फुट शब्दों में बात कहती इरा दर्द से चीख़ पड़ी. आंखों से आंसू बह निकले.

प्यार से उसके आंसू पोंछ अमर ने बच्चे की तरह से दुलारा — ''तू इतनी ब्रेव है, तेरे साहस का तो हम सब लोहा मान गये. ये जानते हुए भी कि तू कितने असाध्य रोग के पंजे में जकड़ चुकी थी, कभी किसी के सामने अपनी बीमारी का नाम तक नहीं लिया. हमेशा हंसते हुए सहज ज़िंदगी जी है. अब कमज़ोर मत पड़, इरा.''

''क्या हुआ, पापा, मम्मी ठीक तो है?'' स्कूल से आयी बेटी रीमा शंकित थी.

''हां, मम्मी ठीक है. कल तेरे नानी-नाना आ रहे हैं. मम्मी को वही बता रहा था.''

''तू कुछ खा ले, रीमू?'' किसी तरह बोलती इरा की आंखों में बेटी के लिए ममता छलक रही थी.

''ओके, मम्मी. हम अभी फ्रेश होकर आते हैं.'' कुछ ही देर में रीमा वापस आ गयी थी.

''पापा, अब हम मम्मी के पास हैं, आप रेस्ट कर लीजिए.''

जब से इरा की हालत बिगड़ी थी, बच्चे और अमर बारी-बारी से इरा के पास बैठते थे.

तेरह साल की रीमा अपनी उम्र से ज़्यादा समझदार हो गयी थी. जब से इरा को अपने कैंसर का पता लगा था, उसने तब से दस वर्ष की रीमा को समझाना शुरू कर दिया था.

''अगर एक दिन तुम सबको छोड़ कर मुझे भगवान के पास जाना पड़े तो मेरी बहादुर बेटी सब संभाल लेगी ना? अपने भाई-पापा और इस घर की ज़िम्मेदारी उठा सकेगी?''

''हां मम्मी, पर हम गॉड से प्रे करेंगे वो तुम्हें कभी ना ले जाये.'' भोलेपन से रीमा कहती.

''एक बात याद रखना हमेशा सूरज को देख कर आगे बढ़ती जाना, कभी पीछे मुड़ कर अपनी परछाई मत देखना, बेटी. अपनी मां की तरह हर मुश्किल का हिम्मत से सामना करना.'' उस उम्र में इरा की बातें रीमा कितना समझ

पाती, पर अब तेरह साल की रीमा बहुत कुछ समझने लगी है.

यूं तो जिस दिन से डॉक्टर ने बताया था इरा का कैंसर अंतिम स्टेज़ में है, उसका जीवन अधिक से अधिक चार-पांच साल चल सकेगा, शायद उसी दिन से इरा ने दिन गिनने शुरू कर दिये थे, पर जड़ हुए अमर को तसल्ली देने को हंसते हुए अमर से कहा था —

''चार-पांच साल तो बहुत होते हैं, अमर. देखना अपने सारे काम पूरे कर लूंगी. इस दुनिया में जो आया है, उसे जाना तो होता ही है, अचानक चले जाने से तो अच्छा यही है, मुझे अपना जाने का समय पता लग गया है.'' उसके चेहरे की मुस्कान से अमर स्तब्ध रह गया था.

अपने कमरे में पलंग पर लेटे अमर के सामने पंद्रह वर्ष पहले की पुरानी यादें सजीव हो गयीं. आज अंतिम सांसें गिन रही कंकाल बनी, इरा का कहां गया वो मनोहारी रूप, कंचन सी काया? शहर के वीमेंस कॉलेज़ के चैरिटी शो में वह आमंत्रित था. स्टेज़ पर सांस्कृतिक कार्यक्रम चल रहे थे. अचानक एक मीठी आवाज़ ने जैसे अमर को दूसरे ही लोक में पहुंचा दिया. स्टेज़ पर इरा की ग़ज़ल से जैसे पूरा हॉल संगीतमय हो गया था. विस्मित अमर स्टेज़ पर गाने वाली युवती को मुग्ध देखता रह गया. जितनी ही मीठी उसकी आवाज़ थी, उतना ही सुंदर उसका मनभावन रूप था. ग़ज़ल समाप्त होते ही अमर की तंद्रा भंग हो गयी. ना जाने कैसा जुनून था, पागलों की तरह अपनी जगह से उठ कर सीधे ग्रीन रूम में इरा के पास जा खड़ा हुआ. सीधे सवाल पूछ डाला था —

''मुझसे शादी करोगी?'' पर्स उठा कर जाने को तैयार इरा से कहा था.

''क्या कह रहे हो?'' दो सुंदर विस्फारित नयन उस पर निबद्ध थे,

''सीधी ही बात तो कह रहा हूं, फिर दोहरा देता हूं, मुझसे शादी करोगी?''

''पागल हो, जान ना पहचान, सीधे शादी करने चले आये.'' आवाज़ में क्रोध था.

''जान-पहचान के लिए ये रहा मेरा विज़िटिंग कार्ड, अच्छी तरह से देख लो. पहचान हो जायेगी.'' अमर ने अपना विज़िटिंग कार्ड इरा के सामने रख दिया था.

''अब जाते हो या सिक्यूरिटी गार्ड को आवाज़ दूं?'' इरा की आवाज़ में तेज़ी थी.

''उसकी ज़रूरत नहीं है, पर मेरा वादा है, आपको अपनी बना कर ही चैन लूंगा.'' अमर बाहर आ गया. अमर के बाहर जाने के बाद इरा ने सरसरी दृष्टि सामने रखे कार्ड पर डाली थी. स्पष्ट शब्दों में छपा था —

अमर सहाय, चार्टर्ड अकाउंटेंट, वर्ल्ड बैंक, शिकागो. लापरवाही से कार्ड वहीं छोड़ इरा घर चली गयी थी.

कुछ देर बाद मानो अमर को होश आया था, यह कैसी दीवानगी थी, वह क्या कर बैठा. उसके साथ पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था. क्या इरा के संगीत में कोई जादुई शक्ति थी जिससे वह बंधा चला गया. शायद उस ग़ज़ल में कोई ऐसी बात थी जिसने उसे ऐसा करने को मज़बूर कर दिया. जो भी हो, अपनी इस मूर्खता पर उसे इरा से माफ़ी मांगनी होगी.

दो दिन बाद इरा के घर की बेल बजाने पर इरा ने ही दरवाज़ा खोला था.

''तुम फिर यहां, क्यों आये हो?'' इरा द्वारा दरवाज़ा बंद करने की कोशिश पर अमर ने दरवाज़ा पकड़ कर बंद होने से रोक लिया.

''अपनी उस दिन की ग़लती के लिए माफ़ी मांगने आया हूं, प्लीज़ माफ़ कर दीजिए.''

''कौन है, इरा बिटिया?'' एक पुरुष-स्वर ने पूछा.

''कोई नहीं पापा, चंदा मांगने वाले हैं.''

''अरे आप यहां ? तुम इन्हें नहीं जानतीं इरा, अभी कुछ दिन पहले ही तो इनकी पोस्टिंग शिकागो में हुई है. मेरी इनके साथ सुरेश के घर मुलाक़ात हुई थी. प्लीज़ अंदर आइए.'' इरा के पापा ने स्वागत किया. विवश इरा को अमर को घर के भीतर लाना पड़ा. अमर के बैठने पर इरा के पापा ने इरा से कहा था —

''इरा बेटी, अपनी मम्मी को बुला लो और चाय के लिए भी कह दो.''

''नहीं-नहीं, उसकी कोई ज़रूरत नहीं है. एक प्रोग्राम में इरा जी की ग़ज़ल सुनी थी, उसी के लिए उन्हें बधाई देने आया था. बहुत अच्छी गायिका हैं.'' अमर ने बहाना बनाया.

''हां, बचपन से ही इसे संगीत का शौक़ था, अब अमरीका की इतनी बड़ी कंपनी में नौकरी करती है, पर अपना संगीत नहीं छोड़ सकी. इसका मतलब आपको भी म्यूज़िक में रुचि है.'' उन्होंने गर्व से बताया.

''जी हां, बस सुनने का शौक़ है. आप क्या यहां ही रहते हैं?'' अमर ने परिचय बढ़ाया.

''हम लोग तो कानपुर में रहते हैं, इरा ने अमरीका देखने को बुलाया है. वहां मेरी की विकास दास नाम से टेक्सटाइल फ़ैक्टरी है.'' इरा के पापा के चेहरे पर ख़ुशी और संतोष स्पष्ट था.

तभी मां के साथ ट्रे में चाय लिये इरा आ गयी. इरा के चेहरे पर नाख़ुशी और शंका साफ़ झलक रही थी. शायद वह सोच रही थी कहीं ये पागल फिर उसी दिन की तरह से कोई दीवानगी ना कर बैठे.

मां को प्रणाम कर अमर ने हल्की दृष्टि इरा पर डाली थी. गुलाबी सलवार सूट में वह बहुत सुंदर लग रही थी. अमर की तरफ़ चाय का कप बढ़ाती इरा ने अमर पर नज़र डालने की ज़रूरत नहीं समझी.

''आशा, ये मिस्टर अमर सहाय हैं, यहीं बैंक में बड़े ओहदे पर काम करते हैं. हमारी इरा बेटी के गीत की बधाई देने आये हैं.'' विकास दास ने पत्नी से अमर का परिचय कराया.

''क्या तुम्हारे माता-पिता भी यहीं रहते हैं? उनसे मिल कर अच्छा लगेगा.'' आशा जी ने कहा.

''जी नहीं यहां अकेला ही रहता हूं. जब से पापा नहीं रहे मां को जैसे संसार से वैराग्य सा हो गया है. हरिद्वार में मेरी ताई के साथ गीता आश्रम में रहती हैं. बहुत बुलाने पर भी नहीं आतीं, मैं ही उन्हें देखने इंडिया जाता रहता हूं.'' अमर की आवाज़ में उदासी थी.

''सच है, बेटा, पति के ना रहने से दुनिया ही बदल जाती है. हम लोग जब तक यहां हैं, आया करो, हमें अच्छा लगेगा.'' आशा जी ने स्नेह से कहा.

''हां अमर, आशा ठीक कहती है. इरा को तो हर महीने ऑफ़िस के काम से शहर से बाहर जाना होता है, उसकी ऐबसेन्स में बहुत अकेलापन महसूस होता है. समय मिले तो आते रहा करो.''

''इस परदेश में ऐसा महसूस होना स्वाभाविक है, पर अगर कभी कोई ज़रूरत हो तो मुझे अपना बेटा समझ कर नि:संकोच बुला लीजिएगा. सुरेश अंकल की तरह आप भी मेरे अंकल ही हुए. ये मेरा कार्ड है, मेरा फ़ोन नंबर और घर का पता भी दिया हुआ है.'' अपना कार्ड देते अमर ने इरा पर नज़र डाली थी.

''ख़ुश रहो, बेटा. तुम्हारी बात सुन कर बहुत अच्छा लगा. परदेश में कोई तुम्हारे जैसा मिल जाये तो बहुत अच्छा लगता है. तुमने जो कहा उसे याद रखूंगा.''

वापस होते अमर ने इरा पर मुस्कुरा कर नज़र डाली थी. अमर को दरवाज़े तक छोड़ने आना इरा की विवशता थी. अक्सर लोगों के जाने पर इरा ही दरवाज़ा बंद करने आती थी. अमर की मुस्कराहट से चिढ़ी इरा ने धीमे से कहा था — ''यू पी के लोग बहुत मिलनसार और ख़ातिर पसंद होते हैं, मां ने घर आते रहने को कहा है, इसका मतलब यह नहीं कि जब जी चाहा, आ जाओ. अगर उन्हें तुम्हारा पागलपन पता लग जाये तो घर में कभी ना आने दें.'' इरा की आवाज़ में चेतावनी थी.

''लेकिन अगर यहां आने का जी चाहे तो अपने को कैसे रोक सकूंगा.'' अमर हंस रहा था

''ज़्यादा स्मार्ट बनने की कोशिश मत करो, अच्छी तरह से समझ लो आज आये सो आये अब फिर आने की ज़रूरत नहीं है.'' दरवाज़ा बंद कर के इरा चली गयी.

एक सप्ताह बाद पापा के परिचित मित्र सुरेश जी के घर उनके बेटे के जन्म दिन पर विकास दास को सपरिवार लंच के लिए आमंत्रित किया गया था. सुरेश जी ने बड़ी गर्मजोशी के साथ विकास जी के परिवार का स्वागत किया था. उनकी बड़ी बेटी उषा इरा को देख कर खिल गयी. इरा का हाथ पकड़, उषा उसे अपने साथ की हमउम्र लड़कियों के पास ले गयी.

''लो भई, अब हमारी लता मंगेशकर आ गयी, अब ख़ूब रंग जमेगा.'' इरा को देख निशा चहकी.

सामने से अमर को आता देख इरा चौंक गयी, फिर याद आया पापा ने बताया था, अमर के साथ उनका परिचय सुरेश जी के घर में ही हुआ था.

''हाय उषा, तेरे कज़िन अमर की क्या पर्सनैलिटी है. मेरा परिचय करा दे.'' अमर को मुग्ध दृष्टि से देखती माला बोली.

''अरे मेरा कज़िन अमर मोस्ट एलिज़िबिल बैचेलर है, ना जाने कितनी लड़कियां उस पर मरती हैं. पता नहीं, किस लड़की का भाग्य उसे पा सकेगा. वैसे तुम सबको उससे मिलाती हूं.'' गर्व से उषा ने कहा.

''अमर भैया, इधर आओ, यहां बहुत लोग तुमसे मिलना चाहते हैं.'' उषा ने आवाज़ दी.

''वाह, मेरी किस्मत! इतनी ब्यूटीफुल गर्ल्स, मुझ जैसे इंसान से मिलना चाहती हैं.'' चेहरे पर मुस्कान थी.

''अमर जी आपसे मिलना तो हमारा सौभाग्य है.

सुना है आप गिटार बहुत अच्छा बजाते हैं. क्या हमें भी सुनने का मौक़ा मिलेगा?'' सुमन ने शोखी से कहा.

''ज़रूर, बशर्ते आप में से कोई साथ में अपना स्वर दे.'' अमर ने अपने में सिमटी इरा को देख कर कहा.

''यह तो सोने में सुहागा वाली बात हुई. हमारी इरा आपका साथ देगी.'' माला ने बात पक्की कर दी.

''नहीं-नहीं, हम नहीं गा सकते.'' इरा ने प्रतिवाद किया.

''अब तेरी ना नहीं मानी जायेगी. इतने फंक्शंस में गाती है, आज मेरे भाई के जन्म दिन पर तो तुझे गाना ही पड़ेगा. भैया अभी गिटार लाती हूं.'' उषा ने इरा को गाने पर मज़बूर कर ही दिया.

अमर ने गिटार के सुर मिला कर, इरा की तरफ़ देखा और गिटार पर एक गीत की धुन शुरू कर दी. इरा के मौन पर सब लड़कियों ने इरा को गाने के लिए विवश कर दिया. इरा की मीठी जादुई आवाज़ के साथ गिटार की धुन ने ऐसा समां बांधा कि सब मंत्रबिद्ध से रह गये. गीत समाप्त होने पर बहुत देर बाद लोगों को तालियां बजाने की याद आयी. उसके बाद सबकी फ़रमाइश पर अमर के गिटार पर इरा को गीत गाने ही पड़े. इरा और अमर समारोह के मुख्य पात्र बन गये. सबने इरा के गायन और अमर के गिटार की दिल खोल कर तारीफ़ की.

''विकास जी, आपकी बेटी तो खरा सोना है, क्या मीठा सुर पाया है. मुझे तो पता ही नहीं था, इरा बेटी इतनी गुणवती है. भगवान इसे लंबी उम्र दे.'' सुरेश जी ने सच्चे मन से तारीफ़ की.

''आपका अमर भी तो कम नहीं है, बैंक के नीरस काम के बीच भी गिटार से इतना प्यार करता है. कितना अच्छा गिटार बजाता है.'' विकास जी ने भी जवाब दिया.

घर लौटने के बाद इरा की मां और पिता काफ़ी देर तक आज के जन्म दिन के समारोह और अमर के बारे में बात करते रहे. बिस्तर पर लेटी इरा भी सोच में पड़ गयी. अमर के साथ उसकी पहले दिन की भेंट क्या उसका जुनून था? आज तो उसका कोई भी आपत्तिजनक व्यवहार नहीं था. जो भी हो, वह गिटार सचमुच अच्छा बजाता है और इतना तो जान गयी कि उसे संगीत से प्यार है.

इरा को दूसरे दिन एक सप्ताह के लिए शिकागो से बाहर जाना पड़ा था. मम्मी-पापा को सावधानी से रहने को कह कर इरा ने किसी मुश्किल के समय के लिए कुछ टेलीफ़ोन नंबर भी दिये थे. अचानक दो दिन बाद उसे पापा का मैसेज़ मिला था, उसकी मां हॉस्पिटल में हैं, डॉक्टर अभी जांच कर रहे हैं. ख़बर मिलते ही इरा ने अपनी वापिसी की सूचना फ़ोन से दी थी. उसकी फ़्लाइट रात के दो बजे पहुंचने वाली थी. विकास जी परेशान हो उठे, तभी उन्हें याद आया, अमर ने अपना फ़ोन नंबर दे कर कहा था — 'अगर कभी किसी तरह की ज़रूरत पड़े तो उसे अपना बेटा समझ कर नि:संकोच काम बता दें.' सुरेश जी को रात में परेशान करना ठीक नहीं है. इरा के ऑफ़िस वालों के पते ज़रूर थे, पर उन्हें अभी वह जान कहां पाये थे. साहस करके अमर को फ़ोन लगाया था. बात सुनते ही अमर ने कहा —

''आंटी हॉस्पिटल में हैं, अभी पहुंचता हूं. इरा की चिंता ना करें, उसे एयरपोर्ट से मैं रिसीव कर लूंगा.'' कुछ ही देर में अमर हॉस्पिटल पहुंच गया था. डॉक्टर से बात करने पर पता लगा, आशा जी को गैस की समस्या थी. ख़तरे की कोई बात नहीं थी. विकास जी ने अमर को धन्यवाद देना चाहा तो उसने कहा — ''क्या अपने बेटे को कोई पिता धन्यवाद देता है?''

एयरपोर्ट पर अमर को देख कर इरा किसी अनिष्ट की आशंका से डर गयी.

''तुम यहां, मम्मी तो ठीक हैं?''

''मम्मी बिलकुल ठीक हैं और अभी उन्हें हॉस्पिटल से डिस्चार्ज़ करा कर, घर छोड़ कर आया हूं.''

''थैंक्स, हम तुम्हें यहां देख कर कुछ और ही सोच कर डर गये थे.''

''क्यों, क्या मेरी शक्ल इतनी डरावनी है?'' अमर मुस्कुरा रहा था.

घर पहुंची इरा को देख विकास जी ख़ुश तो हुए, पर पछतावे से बोले —

''सॉरी, बेटी. तेरा प्रोग्राम बिगड़ गया. रात में आशा ने जब सीने में दर्द बताया तो बस हार्ट अटैक ही सोच बैठा. उस वक़्त बस अमर ही याद आया. अमर की वजह से सारी परेशानी दूर हो गयी. एक बेटे की तरह इसने साथ दिया. ऐसे लड़के कम ही मिलेंगे.'' स्नेह से अमर को देखते विकास जी ने कहा.

''अब अंकल बहुत तारीफ़ हो गयी. यह तो मेरा फ़र्ज था. अब आप सब आराम कीजिए, मैं चलता हूं.''

''थैंक्स, अमर. तुम्हारा यह एहसान हमेशा याद रखूंगी.'' इरा ने सच्चाई से कहा.

''इसका मतलब अब इस घर के दरवाज़े मेरे लिए खुले रहेंगे.'' शरारत से अमर ने कहा.

''जी हां अब आप जब चाहें, आ सकते हैं.'' मीठी मुस्कान के साथ इरा बोली.

उस दिन के बाद से अमर अक्सर इरा के घर जाने लगा. उसके वहां जाने से इरा के घर में ख़ुशी का माहौल बन जाता. इरा की मां उसे जबरन खाना खिला कर ही वापिस जाने देतीं. बेचारे को मां के हाथ का बना खाना कहां नसीब हो पाता है. अब तो इरा को भी अमर के आने की प्रतीक्षा रहती.

अचानक एक दिन सुरेश जी ने इरा के पापा के सामने अमर के साथ इरा के विवाह का प्रस्ताव रख कर चौंका दिया.

''अमर मेरे दूर के रिश्ते के भाई का बेटा है, पर मुझे सगे चाचा जैसा प्यार और सम्मान देता है. उसके विवाह की चिंता करने वाली मां वैराग्य ले बैठी है. अमर बहुत समझदार और योग्य लड़का है. इरा बेटी उसके साथ बहुत ख़ुश रहेगी. अगर आप उचित समझें तो हम लोग दोनों का विवाह करा सकते हैं.''

इरा के माता-पिता के इन्कार का सवाल ही नहीं उठता था. इरा भी थोड़ी मनुहार के बाद अमर के साथ विवाह के लिए राजी हो गयी. अमर को पाकर कोई भी लड़की अपना भाग्य सराहेगी, यह बात इरा भी मानती थी. एक सादे समारोह में दोनों का मंदिर में विवाह संपन्न हो गया. बेटी को अमर को सौंप इरा के मां-पापा कानपुर वापिस चले गये.

विवाह के बाद दोनों के जीवन में ख़ुशियां ही ख़ुशियां थीं. दो वर्ष बाद रीमा और आशीष के जन्म ने उनकी ख़ुशियां दुगनी कर दीं. बच्चों के आ जाने से घर गुलज़ार हो उठा. समय के साथ बच्चे स्कूल जाने लगे, दोनों ने इरा और अमर की तरह तीव्र मेधा पायी थी. आशीष अपने पापा से गिटार सीखता और रीमा मां से संगीत सीखती. उनके मित्र परिहास करते, उनके घर में तो पूरा आर्केस्ट्रा ही है. जीवन में कहीं कोई कमी नहीं थी. इरा को कभी-कभी अमर छेड़ता.

''देखा, जो कहा था पूरा किया, तुम्हें पा ही गया.'' आवाज़ में गर्व होता.

''वो तो जनाब हमें आप पर तरस आ गया, वरना इस इरा को चाहने वालों की कोई कमी नहीं थी.'' इरा शान से जवाब देती.

कुछ दिनों से अमर ने महसूस किया, इरा की खाने में रुचि नहीं रह गयी थी. एक या आधी रोटी भी मुश्किल से खा पाती. उसकी मनपसंद डिशेज़ भी अनछुई रह जातीं.

''क्या बात है, इरा, देख रहा हूं आजकल तुमने खाना बहुत कम कर दिया है. कहीं और ज़्यादा स्लिम होने का चक्कर तो नहीं है?'' अमर ने इरा को छेड़ा.

नहीं, अमर पेट में भारीपन लगता है. भूख नहीं लगती. ताज्जुब यह है कि इतना कम खाने पर भी मेरा वज़न बढ़ता जा रहा है. कमर पर सब कपड़े टाइट हो रहे हैं.'' मुस्कुराती इरा ने बताया.

''मेरे ख्याल से तुम्हें अपनी परवाह करनी चाहिए. अपनी डॉक्टर फ्रेंड मीरा से सलाह क्यों नहीं लेतीं...''

अमर को याद आया उसके बाद डॉक्टरों के पास जाने का सिलसिला चलता रहा. पहले डॉक्टर की दी गयी गैस की दवाइयां चलती रहीं, पर कोई फ़ायदा नज़र नहीं आया. उस बीच इरा को बार-बार यूरिन के लिए जाना पड़ने लगा तो डॉक्टर ने उसे यूरोलॉज़िस्ट के पास रिफ़र कर दिया. उस डॉक्टर को लगा, इरा के यूरीनल पाइप में कोई ख़राबी आ गयी है. दवाइयां चलती रहीं, समय बीतता जा रहा था. इरा की स्थिति में कोई सुधार नहीं आ रहा था. अब कभी-कभी एक्सेसिव ब्लीडिंग भी इरा को परेशान करती.

''ये डॉक्टर मुझे यूं ही नचा रहे हैं, सोचती हूं किसी होम्योपैथ से दवा लूं.'' परेशान इरा ने अमर से कहा.

''अभी तक तुम मुझे नचाती थीं, अब डॉक्टर तुम्हें नचा रहे हैं.'' अमर ने परिहास किया.

इरा के घर के पास एक रिटायर्ड नर्स मारिया रहती थी. इरा उसका बहुत सम्मान करती थी. बच्चे जब छोटे थे कभी उनकी तबीयत ख़राब होने पर घबरायी इरा सिस्टर मारिया को ही बुला लाती थी. मारिया अपने अनुभव से इरा की सहायता करती थी. इरा और मारिया के बीच मां-बेटी जैसा संबंध बन गया था. कुछ दिनों से अपनी परेशानियों के कारण इरा मारिया से नहीं मिल सकी थी. एक दिन मिलने पर इरा ने जब अपनी परेशानी मारिया को बतायी तो अनुभवी आंखों में शंका उभर आयी.

''इरा, तुम फ़ौरन गायनोकोलॉज़िस्ट डॉक्टर मार्था से

मिलो. वह अपने काम में बहुत मशहूर हैं.''

''पर सिस्टर मुझे कोई गाइनिक प्रॉबलेम तो है ही नहीं, उनके पास जाने से क्या फ़ायदा?''

''आई विश. ऐसा ही हो, पर चेक अप कराने में तो कोई नुकसान नहीं है. तुम चाहो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकती हूं. मार्था मुझे बहुत मानती हैं. उनके साथ काम कर चुकी हूं.'' मारिया गंभीर थी.

डॉक्टर मार्था ने इरा की समस्या सुन कर तुरंत कई टेस्ट करने के निर्देश दिये थे. रिपोर्ट मिलने वाले दिन डॉक्टर मार्था ने फ़ोन कर के कहा था —

''इरा, अपने पति के साथ फ़ौरन मुझसे मिलो, देर मत करना.''

''क्यों डॉक्टर, ऐसा क्या है, मेरे पति बाहर गये हुए हैं, मैं आ रही हूं.'' शंकित इरा तुरंत ही चल दी.

''इरा, तुम इतने दिन कहां थीं? अच्छा हो, अपने पति के साथ आओ...''

''डॉक्टर, आपको जो बताना है, मुझे बता दीजिए. मेरा दिल बहुत मज़बूत है, जो भी है सह लूंगी.''

''तुम एक बहुत सीरियस बीमारी में जकड़ चुकी हो. इतनी देर क्यों कर दी, इरा?''

''सीरियस बीमारी कैंसर तो नहीं हो सकती, आप बता ही दीजिए.'' इरा ने मज़ाक करना चाहा.

''हिम्मत रखो, इरा, तुम्हें ओवेरियन कैंसर है.''

''क्याऽऽ आ? यह नहीं हो सकता. मैं तो बिलकुल ठीक हूं, बस कुछ छोटी-मोटी प्रॉबलेम्स हैं.''

''काश ऐसा ही होता, तुम अमरीका में रहती हो, यहां के नियम जानती हो, डॉक्टर का फ़र्ज़ है, अपने पेशेंट को उसकी बीमारी के बारे में सब कुछ सही-सही बता दे. तुम्हारा कैंसर लास्ट स्टेज़ में पहुंच चुका है.'' डॉक्टर ने गंभीरता से कहा.

''मेरे पास कितना समय शेष है, डॉक्टर?'' इरा के चेहरे का रंग बदल गया था,,

''ज़्यादा से ज़्यादा चार-पांच साल. मुझे दुःख है.''

''इसका मतलब अब कुछ नहीं हो सकता, मेरे बच्चे अभी छोटे हैं, डॉक्टर. मेरे पति सह नहीं सकेंगे.''

''एक डॉक्टर होने के नाते हम अपने मरीज़ को बचाने की हर संभव कोशिश करते हैं, उसके बाद गॉड की मर्ज़ी. तुम्हारी सर्जरी की जायेगी, उसके लिए तुम्हारे हसबैंड की परमीशन चाहिए.''

अमर नहीं जानता अपने कैंसर की लास्ट स्टेज़ के बारे में सुन कर इरा की क्या प्रतिक्रया रही होगी, पर जब वह वापिस आया तो इरा ने मुस्कुराते हुए मज़ाक में कहा था — ''मिस्टर अमर सहाय, अब आपको अपनी पत्नी की सेवा करने का मौक़ा मिला है. बस कुछ सालों की मेहमान है. कल आपको डॉक्टर मार्था ने बुलाया है.''

''मुझे ऐसे मज़ाक पसंद नहीं हैं, इरा. सच-सच बताओ, डॉक्टर ने क्या बताया.'' अमर नाराज़ था.

''सच ही कह रही हूं, मेरा कैंसर लास्ट स्टेज़ में पहुंच चुका है, अमर, पर अभी मेरे पास कुछ वक़्त है.''

''अच्छा तुम्हारा कैंसर लास्ट स्टेज़ में है और तुम हंस रही हो.'' अमर यक़ीन नहीं कर पाया.

''ठीक है यह देखो, मेरी रिपोर्ट पर तो विश्वास करोगे.'' इरा ने अपनी रिपोर्ट अमर को पकड़ा दी.

''नहीं, यह नहीं हो सकता.'' अमर सर पकड़ कर बैठ गया.

''अरे जनाब, अभी हम नहीं जा रहे हैं, अभी तो हमारी सर्जरी होनी है. शायद उसके बाद कुछ और समय मिल जाये.'' इरा ने अमर को तसल्ली देनी चाही.

सर्जरी के पहले इरा ने सिस्टर मारिया से कहा था — ''सिस्टर मेरी सर्जरी के वक़्त तुम मेरे लिए प्रार्थना करना. अगर मुझे कुछ हो जाये तो मेरे बच्चों का ख़्याल रखना. मुझे तुम पर यक़ीन है. तुम मेरी बात याद रखोगी?''

''तुम्हें कुछ नहीं होगा, माई चाइल्ड. तुम्हारे बच्चे मेरे बच्चों जैसे हैं. उनको बचपन से प्यार दिया है.'' मारिया की आंखें भर आयीं. इरा के साथ उनका प्यार का रिश्ता रहा है.

सर्जरी तो हो गयी, ओवरी निकाल देने पर भी कैंसर का जो जाल पूरे शरीर में फैल चुका था, उसे निकाल फेंकना संभव नहीं था. इरा ने अपनी नॉर्मल लाइफ़ जीनी शुरू कर दी. उसने दृढ़ निश्चय कर लिया, जीवन के जितने दिन शेष हैं उन्हें अपने परिवार के साथ एक-एक पल ख़ुशी के साथ बितायेगी. अपने ऑफ़िस के बहुत से साथियों को पता भी नहीं चलने दिया कि वह कैसे मौत के साये में जी रही थी. अपने मित्रों के साथ उसी गर्मजोशी के साथ मिलती, बच्चों और अमर को आभास भी नहीं होने देती कि उसका जीवन कुछ ही समय का मेहमान है. पहले ही की तरह से पार्टी के लिए मित्रों को इनवाइट करती. जो उसके

बहुत निकट के मित्र होते उन्हें हंस-हंस कर बताती कैसे अमरीका के डॉक्टर भी उसके कैंसर से धोखा खा गये. सब स्तब्ध रह जाते, पर इरा का परिहास चलता रहता. अमर और बच्चों की फेवरिट डिशेज़ बनाती, अमर इतना काम करने पर नाराज़ होता तो इरा हंस कर कहती —

''कहते हैं पति के दिल पर राज करने के लिए पेट के रास्ते से दिल जीता जा सकता है. वही करती हूं.''

''मेरे दिल पर तो तुम पहले ही राज कर चुकी हो, अब और क्या चाहती हो?'' अमर भी हंस पड़ता.

''अमर, इस संडे मैंने ओवेरियन कैंसर के लिए फ़ाइव-के, यानी पांच किलोमीटर की दौड़ ऑर्गनाइज़ की है. तुम्हे भी मेरे साथ दौड़ना होगा. बस सवेरे जल्दी उठना होगा.'' अचानक एक दिन इरा ने सूचना दी.

''क्या, पागल हो गयी हो? इस हालत में दौड़ोगी. इससे क्या फ़ायदा होगा?'' विस्मित अमर ने पूछा.

''डॉक्टर ने कहा है, अभी मैं सभी काम सामान्य रूप से कर सकती हूं. हां, तुम फ़ायदे की बात पूछ रहे हो, तो अपने साथ दौड़ते साथियों से मुझे कितनी शक्ति और मॉरल सपोर्ट मिलेगा, तुम समझ नहीं सकते. उससे बड़ी बात यह है कि लोगों को ओवेरियन कैंसर के बारे में जानकारी मिलेगी. काश मुझे इसके बारे में पहले से कुछ पता होता.'' इरा के चेहरे पर हलकी सी उदासी थी.

अमर के विरोध के बावजूद पिछले साढ़े तीन वर्षों से इरा अपने साथियों और मित्रों के साथ उत्साहपूर्वक पांच किलोमीटर दौड़ती रही है, दौड़ने के बाद चेहरे पर थकान का निशान तक नहीं होता बल्कि आंखों में जीत की चमक होती. विवश हो अमर को भी साथ देना होता, वह इरा की हिम्मत पर ताज्जुब करता. क़रीब चार वर्ष का समय बीतने वाला था. अब इरा की तबियत कुछ गिरी-गिरी सी रहती. पिछले कुछ दिनों से वह देर रात तक कुछ लिखती रहती. अमर कहता — ''इतनी देर तक जागना ठीक नहीं है. तुम्हें आराम करना चाहिए. क्या लिखती रहती हो?''

''कुछ नहीं, ऑफ़िस के काम नोट करती हूं, तुम सो जाओ.'' इरा सामान्य स्वर में जवाब देती.

अमर सोचता शायद वह अब भी अपने ऑफ़िस के कामों को पूरा कर रही है. अधूरे काम छोड़ना कभी उसकी आदत नहीं रही है.

''अमर, इस सोलह तारीख़ को एक पार्टी करनी है. रीमा और आशीष के सारे दोस्तों को और हमारे भी कुछ फ्रेंड्स को इनवाइट करना है?'

''क्या कह रही हो, अपनी हालत देखी है, इतना काम कौन करेगा?''

''मेरी इतनी सी ख़ुशी भी पूरी नहीं करोगे? अपने बच्चों को एक ख़ुशी तो दे जाऊं. मैंने पार्टी का मेनू बना लिया है. बाहर से सब कुछ मंगा लो.''

''तुम्हारी ऐसी ही बातें मुझे तुम्हारी बात मानने को मज़बूर कर देती हैं वरना तुम्हारी ऐसी हालत में पार्टी करना क्या ठीक है?''

''अभी तो ठीक महसूस कर रही हूं, तुम बेकार डराते रहते हो. एक बात कहूं, यह सच है, मुझे अपने दुनिया से जाने वाले दिन का इंतज़ार है, पर उससे डरती नहीं, पर तुम्हारी आंखों और चेहरे पर मेरी मौत की जो दहशत है, उसे साफ़ देख पाती हूं. तुम्हारे उस डर से इस दुनिया को छोड़ने की बात सोच कर दुःख होता है. मुझे ख़ुशी से जाने दो, अमर. अब रुक पाने का कोई उपाय शेष कहां रह गया है?''

अंततः शानदार पार्टी हुई. रीमा और आशीष ने अपने मित्रों के साथ जी खोल कर एंज्वाय किया. बहुत दिनों बाद उनके चेहरों पर ख़ुशी आयी थी. कुछ देर के लिए वे मां की बीमारी भूल से गये थे वरना उन पर इरा की बीमारी हमेशा हावी रहती थी. इरा ने भी अपनी शिफ़ॉन की नीली साड़ी पहनी थी. पूरे समय अपने मित्रों के साथ जिस तरह से हंसी-मज़ाक कर रही थी कि यह विश्वास कर पाना असंभव था कि वह बस कुछ ही दिनों की मेहमान है. पार्टी के बाद इरा निढाल–सी पलंग पर गिर सी गयी. बस उस दिन के बाद से उसकी हालत बिगड़ती ही गयी और अब तो उसका दर्द और तकलीफ़ देख कर कभी-कभी अमर सोचने को विवश हो जाता, इतना कष्ट वह कैसे सह पा रही है, इससे अच्छा है वह अब चली ही जाये. अब ना तो कोई पेन किलर उसका दर्द कम कर सकता था, ना कोई दवा, उसका दर्द देख पाना भी सहन नहीं हो रहा था.

''पापा, आकर देखिए, मम्मी एकदम चुप हो गयी है,'' घबरायी रीमा ने आकर अमर को चैतन्य किया.

कुछ देर पहले दर्द से छटपटाती इरा, शांति से सो रही लग रही थी. उसका चार वर्षों का इंतज़ार ख़त्म हो गया था, वह जा चुकी थी.

दुखी अमर ने पास के घर में इरा के निधन की सूचना

दे दी, सूचना देना ज़रूरी था.

दो दिन बाद भारत से इरा के भाई के आने पर अंतिम संस्कार किया जाना तय किया गया था. नियमानुसार इरा का शव हॉस्पिटल ले जाया जाना था. लोग आने लगे थे. इरा की मृत्यु प्रत्याशित ही थी, फिर भी उसका जाना दुखद था. उसकी सहेलियां उसके साहस की बातें कर रही थीं. हॉस्पिटल की एम्बुलेंस में आये लोग इरा का शव ले गये. अमर की उसके लिए यही अंतिम विदाई थी. अब दो दिन बाद उसके अंतिम संस्कार की तैयारी करनी थी. अचानक आशीष ने अमर के हाथ में एक डायरी देकर रोते हुए कहा —

''मम्मी ने कहा था, जब वह हमारा घर छोड़ कर चली जायें तब यह डायरी आपको दे दूं.''

विस्मित अमर डायरी लेकर अपने कमरे में चला गया. अमर को याद आया शायद देर रात तक इरा इसी डायरी पर कुछ लिखती रहती थी और वह समझता रहा इरा ऑफ़िस के काम पूरे कर रही थी. अमर ने पहला पृष्ठ खोला था — ''डॉक्टर से अपने कैंसर की बात सुन कर भी आशा थी आजकल कैंसर लाइलाज़ तो नहीं है, पर सिर्फ़ चार या पांच साल का जीवन शेष है? यानी अब सोते-जागते अपनी मौत का इंतज़ार करना है, ज़रूरी तो नहीं वो इतनी मोहलत दे ही दे.

अमर बेहद परेशान हैं, बच्चों को सच्चाई बता कर अभी से दुखी करना ग़लत होगा. सर्जरी से कोई उम्मीद नहीं बढ़ी, कैंसर ने मेरे शरीर में अपना साम्राज्य पूरी तरह से जमा लिया है, उस पर विजय पाना असंभव है.

अब मैंने तय कर लिया है, जीवन के जितने भी वर्ष शेष हैं, उन्हें पूरी तरह भरपूर ख़ुशी के साथ जिऊंगी. हां, अपने काम जितनी जल्दी पूरे कर सकूं, करने की कोशिश करूंगी. अमर सत्य जानते हुए भी मेरे साहस के कारण आश्वस्त से रहते हैं, बच्चों को अब वास्तविकता ज्ञात हो गयी है, पर मेरा सामान्य व्यवहार उनके जीवन में दुःख नहीं घोलता. दोनों बच्चे आकर अपने स्कूल और मित्रों के बारे में पहले की तरह से ही बातें करते हैं, मेरे साथ पहले जैसा ही हंसी-मज़ाक करते हैं. हम सब कैरम, शतरंज ही नहीं कभी-कभी मिलकर अपना आर्केस्ट्रा का शौक़ भी पूरा करते हैं, अमर ने मेरे कई गीत रिकॉर्ड किये हैं, शायद मेरी बेटी रीमा उन गीतों को दोहराते हुए मुझे याद किया करेगी. अब तबियत ठीक नहीं लगती, अब समय कम रह गया लगता है, अमर से जो कहना है अब लिख ही देना ठीक है.

अमर, मैं चाहती हूं मेरा अंतिम संस्कार बहुत सादगी से किया जाये, संस्कार में गायत्री मंत्र और दूसरे मंत्रों के साथ सिस्टर मारिया की प्रार्थना के मंत्र भी पढ़े जायें. मेरे कपड़े भारत के किसी अनाथालय को दे देना. मेरी मृत्यु पर किसी की आंख से आंसू नहीं निकलने चाहिए, मैंने बहुत साहस और ख़ुशी के साथ अपना जीवन जिया है, मेरी मौत तो पिछले चार सालों से मेरे साथ रही है, पर उससे कभी डरी नहीं. सच तो यह है पिछले चार वर्षों से हर दिन उसका इंतज़ार करती रही हूं.

मेरी फ़ाइव-के की दौड़ कभी रुकनी नहीं चाहिए, अब इस दौड़ को चलाते रहना तुम्हारी ज़िम्मेदारी है, अमर. इस दौड़ के रुकने का मतलब मुझे भूल जाना होगा. तुम्हारा साथ मेरे बच्चे ज़रूर देंगे, इसका यक़ीन है.

अमर, मेरे बच्चों के जन्म दिन ख़ूब धूमधाम से मनाना उन्हें मेरी कमी कभी महसूस नहीं होने दोगे, इस बात का तो पूरा विश्वास है. जाती बेला में अपने मन की एक बात कहना चाहती हूं, संसार से जाने वाले के मरण-दिवस पर प्रति वर्ष पूजा-पाठ का आयोजन करने वाली प्रथा मुझे कभी न्यायोचित नहीं लगती, किसी के दुनिया से जाने का दिन क्यों याद किया जाये? तुम्हे अगर मेरा जन्म दिन याद रहे तो बस उसे ही बच्चों के साथ केक काट कर ख़ुशी से मनाया करना. उस दिन की याद में बच्चे ख़ुशी से मां को याद करें, यही चाहती हूं. तो मिस्टर अमर सहाय मेरे जाने के बाद भी मेरा जन्म दिन मनाया करेंगे ना?

एक सत्य विचलित और व्यथित करता है, जानती हूं, मेरा बेटा आशीष तो लड़का है, अपने पापा की छत्रछाया में बड़ा होकर उनके जैसा ही योग्य बनेगा, पर अमर, अपनी किशोरी बेटी से कैसे कहूं, उसे अब अपनी मां के बिना अकेले ही अपना जीवन जीना होगा, किसी समस्या में उसे कौन संभालेगा, कौन सलाह देगा? कैसे समझाऊं दस साल बाद उसे अपने शरीर में कैंसर की संभावनाओं का शक दूर करने के लिए नियमित रूप से टेस्ट कराते रहना होगा. भगवान, तुमने मुझे बहुत कुछ दिया, काश मेरी बेटी के लिए मुझे जीवन के तीन-चार वर्ष और दे देते.

मेरी बेटी . . . .''

डायरी के आगे के पृष्ठ खाली थे.

138/9NE, 37TH PL,
Bellevue, WA 98005. Tel.: 425-869-5679
E-mail: pushpasaxena@hotmail.com

कहानी

भीतर दबा सच

✍ डॉ. एकांत शर्मा

'कथाबिंब' के हितैषी
एवं नियमित लेखक

दरवाज़े के बाहर तांगा रुकने की आवाज़ आयी तो मैंने खिड़की से बाहर झांक कर देखा, सोचा कौन आया होगा इस समय. तब तक तांगे से उतर कर और एक छोटा-सा संदूक उठाये सांझ के धुंधलके में साये की तरह दिखने वाली एक आकृति दरवाज़े की ओर बढ़ आयी थी. मैंने तुरंत ही दरवाज़ा खोल दिया. सामने बड़ी भाभी को देख कर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ. वे कभी हमारे घर आ सकती हैं, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी. कुछ असमंजस की सी स्थिति में मैंने झुक कर उनके पैर छुये तो उन्होंने आशीर्वाद का हाथ मेरे सिर पर रख दिया. उनके हाथ से संदूक लेकर मैंने उनके अंदर आने के लिए जगह बनायी तो वे कुछ सकुचाती हुई सी अंदर आयीं और दरवाज़े के साथ ही दीवार से सटा कर रखे दीवान पर हांफती सी बैठ गयीं.

''पानी लेकर आता हूं.'' — यह कहते हुए मैं तेज़ी से अंदर चला गया. नीता को जब मैंने यह बताया कि बड़ी भाभी आयी हैं तो उसका मुंह भी आश्चर्य से खुला रह गया. फिर वह बड़बड़ायी — ''क्या लेने आयी हैं यहां, इस शहर में उनके भाई रहते हैं, उनके यहां क्यों नहीं चली गयीं?'' मैंने घड़े से पानी निकाल कर गिलास में उंडेलते हुए कहा — ''वह सब बाद में देखेंगे, तुम जल्दी से बैठक में चली जाओ.''

मैं बड़ी भाभी को पानी का गिलास पकड़ा ही रहा था कि नीता भी बाहर निकल आयी. उसने बड़ी भाभी के पांव छुये तो उन्होंने ढेरों आशीर्वाद दे डाले. पानी पीकर उन्होंने पास की तिपाई पर गिलास टिकाया और फिर बोलीं — ''भैया बहुत दिनों से बुला रहा था कि कुछ दिन उसके पास आकर रहूं. मैंने फ़ोन पर उसे बता दिया था कि मैं आज यहां पहुंचूंगी और पहले सीधे देवर-देवरानी के यहां जाऊंगी. कुछ दिन रहूंगी तुम लोगों के पास. कुछ दिनों में भैया मुझे लेने आयेंगे तो उनके घर चली जाऊंगी.''

नीता बोली — ''बहुत अच्छा किया भाभी. जब तक आपके भैया आपको लेने आयेंगे, आप हमारे साथ रह सकोगी. आओ, अंदर चलो, थोड़ा मुंह-हाथ धो लो, मैं तब तक चाय बना लाती हूं.'' नीता ने उनकी वह छोटी-सी संदूकची उठा ली और वे उनके पीछे-पीछे अंदर चली गयी.

मैं उन्हें अंदर जाते देखता रहा. उनके कंधों के नीचे झूलती सफ़ेद बालों की वह छोटी-सी चोटी इस बात की गवाही दे रही थी कि वे बुढ़ापे की दहलीज पार कर चुकी हैं. एक समय था जब वे बहुत सुंदर दिखती थीं. अपनी सुंदरता का उन्हें अहसास भी था, दिन में दो बार नहाना और तीन बार कपड़े बदल कर शीशे में ख़ुद को निहारना उनकी दिनचर्या का अभिन्न अंग था. हरेक को अपने से कम करके आंकना और उसे नीचा दिखाना, उनका प्रिय शगल था. अपनी नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती थीं वो.

बड़े भैया की वकालत अच्छी ख़ासी चल रही थी. उनकी फिलासफ़ी थी कि जब तक कमाये गये पैसों को ख़र्च नहीं करेंगे तो फिर कमाने का फ़ायदा ही क्या. इस फिलासफ़ी के चलते, वे खुल कर ख़र्च करते. बड़े भैया और भाभी दोनों ही पहनने-ओढ़ने का शौक़ रखने के साथ-साथ खाने-पीने के भी काफ़ी शौक़ीन थे. उनके खाने में शुद्ध देशी घी का ही इस्तेमाल होता और शहर तथा शहर से बाहर की

नामी दुकानों से मंगाये गये पकवान उनके रोज़ाना के खाने का हिस्सा बनते. अगर कोई कमी थी तो बस यह कि उनके कोई लड़का नहीं था. एक बेटी थी सुहानी, जिसे वे पलकों पर रखते थे.

बाबूजी के बाद अम्मा की भी असमय मौत हो जाने की वजह से बड़े भैया मुझे अपने साथ ले आये थे. बड़ी भाभी को यह अच्छा नहीं लगा था. उनका विचार था कि मेरे ननिहाल वालों को मुझे अपने साथ ले जाना चाहिए था. वे इस बात से दु:खी थीं कि बड़ी चालाकी से मेरे मामा-मामी ने उनके भोले-भाले पति के गले मुझे मढ़ दिया था. वे हमेशा मुझे यह अहसास कराती रहती थीं अगर वे मुझे अपने साथ न ले आये होते तो मैं सड़कों पर भीख मांग रहा होता. मुझे खाना देते समय घुमा फिरा कर उनका यह जताना बहुत अखरता कि वे नबावी पकवान मुझे सिर्फ़ इस वजह से खाने को मिल रहे हैं कि किस्मत ने मुझे उनके साथ रहने का मौक़ा दिया है. अपनी बेचारगी के कारण मैं सब कुछ सह लेता.

गर्मियों की छुट्टियों की उस दोपहर में मैं अंदर के कमरे में सो रहा था. बड़े भैया दोपहर का खाना खाने के लिए घर आये हुए थे. बर्तनों की खड़खड़ाहट से मेरी नींद उचट गयी. बाहर के कमरे में भैया को खाना परोसते हुए बड़ी भाभी कह रही थीं — ''दो साल से यह हमारे पास है, दसवीं करके आया था, इसे इंटर तक पढ़ा दिया है. छुट्टियां चल रही हैं, सारा दिन यहीं पड़ा रहता है. मैं तो कहती हूं, इसे कहीं काम पर लगवा दो.''

बड़े भैया ने कहा था — ''ठीक कह रही हो तुम, कल से मैं इसे अपने साथ कोर्ट ले जाऊंगा.''

भाभी ने तुनक कर कहा था — ''आख़िर कब तक इसे अपने पास रखेंगे हम, किसी और शहर में इसकी नौकरी लग जाये तो इस बहाने इससे पीछा तो छूटे.''

बड़े भैया का जवाब सुनने के लिए मेरे कान खड़े हो गये थे — ''सौतेला है तो क्या हुआ, भाई है मेरा. पिता तो एक ही थे न हम दोनों के. बी. ए. कर ले तो उसके बाद ख़ुद ही कहीं न कहीं नौकरी पर चला जायेगा.''

भाभी बड़बड़ायी थीं — ''इसका मतलब दो साल तक और...'' आगे मुझे कुछ और सुनायी नहीं दिया था. फिर नींद नहीं आयी और जब मैं उठ कर खड़ा हुआ तो यह निश्चय कर चुका था कि अवांछित–सा यहां रहने के बजाय मुझे जल्दी से जल्दी यहां से निकल जाना होगा.

कुछ ही दिन बाद मुझे अनायास ही इसका मौक़ा भी मिल गया. मेरा मित्र राजवीर गर्मियों की छुट्टियां बिताने के लिए अपने मामा के यहां जा रहा था. उसने अपने साथ मुझे भी चलने के लिए कहा तो मैं तुरंत ही तैयार हो गया. जैसी कि मुझे उम्मीद थी, बड़े भैया और भाभी ने आसानी से इसके लिए मुझे अनुमति दे दी और मैं राजवीर के साथ इस शहर में चला आया.

यहां आकर मुझे बहुत अच्छा लगा. हमारे छोटे से शहर के मुक़ाबले यह शहर बहुत बड़ा था. राजवीर के मामा के परिवार से इतना स्नेह मिला कि मैं शीघ्र ही उनमें घुलमिल गया. क़रीब दो हफ़्ते मैं उनके घर रहा. हमारे वापस लौटने में दो-तीन दिन ही बचे थे जब राजवीर ने मुझे बताया कि उसके मामा-मामी को मैं इतना अच्छा लगा था कि वे अपनी बेटी नीता के साथ मेरे रिश्ते की बात चलाना चाहते थे.

मन ही मन मैं भी कहीं नीता को पसंद करने लगा था, पर यह प्रस्ताव तो मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित था. उस दिन चाय पीते समय राजवीर के मामाजी ने भी यह बात मेरे सामने रखी तो मैं सिर्फ़ यही कह पाया कि जब तक मुझे नौकरी नहीं मिल जाती तब तक मैं शादी के बारे में सोच भी नहीं सकता, फिर भैया-भाभी से पूछे बिना मैं हां कैसे कर दूं. आगे पढ़ने के बजाय मैं नौकरी करना चाहता हूं, इस बात से आश्वस्त होने के बाद वे मुझे उसी दिन उस ट्रस्ट के चेयरमैन से मिलाने ले गये जिनके कई स्कूल चलते थे. उन्हें अपने मिडिल स्कूल के लिए टीचर की ज़रूरत थी. दूसरे दिन ही मेरा इंटरव्यू हुआ और मुझे नौकरी मिल गयी. यह सब कुछ इतनी तेज़ी से घटा कि मुझे यह विश्वास हो गया कि शायद स्वयं भगवान ही बड़ी भाभी की इच्छा और मेरी मनोकामना को पूरा करने में लगे थे.

मैंने बड़े भैया और भाभी को अपनी नौकरी लगने की बात बतायी तो भैया कुछ नाराज़ नज़र आये, बोले — ''तुम वहां छुट्टियां बिताने गये थे, या नौकरी ढूंढ़ने? कम से कम ग्रेज़ुएट होने के बाद ही नौकरी की सोचते.''

मेरे कुछ बोलने से पहले ही बड़ी भाभी ने मोर्चा संभाल लिया था — ''अरे ग्रेज़ुएट भी नौकरी के लिए मारे-मारे फिर रहे हैं. जब इसे घर बैठे नौकरी मिल रही है तो इसमें हर्ज़ ही क्या है. मैं तो कहती हूं, यह मौक़ा हाथ से

नहीं जाने देना चाहिए.''

थोड़ी देर की बहस के बाद बड़े भैया ने हथियार डाल दिये थे और छुट्टियां ख़त्म होते ही मैं ड्यूटी ज्वाइन करने के लिए यहां चला आया था. बड़े भैया मेरे साथ आये थे. मेरे रहने के लिए ट्रस्ट का कमरा उपलब्ध होने से पहले दो दिन तक हम राजवीर के मामा के घर ही रुके थे. कमरे में शिफ़्ट होने के बाद मुझे कुछ रुपये पकड़ा कर और तमाम तरह की हिदायतें देकर बड़े भैया दूसरे दिन ही वापस लौट गये थे.

यहां आकर मुझे मुक्ति का सा अहसास हुआ था. सोचता, ईश्वर कभी भी किसी को इतनी बेचारगी न बख़्शे कि वह किसी के भी पास, यहां तक कि अपने सगे-संबंधियों के पास भी अवांछित और बोझ बन कर रहे. मुझे तो बहुत जल्दी निजात मिल गयी थी इससे, पर उनका क्या होता होगा जिनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं होता? सोच कर ही मेरी आत्मा कांप उठती. मेरी इस छोटी–सी नौकरी ने मेरा आत्म-सम्मान लौटाने और बड़ी भाभी को इतनी जल्दी अनपेक्षित रूप से राहत पहुंचाने का बड़ा काम कर दिया था.

नौकरी करते कुछ माह ही बीते थे कि राजवीर के मामा मेरे लिए नीता का रिश्ता लेकर बड़े भैया के पास जा पहुंचे. बड़े भैया ने नीता को देखा हुआ था और जब उन्हें यह पता चला कि मैं नीता को पसंद करता हूं तो उन्होंने बड़ी भाभी के इस विरोध को नज़रअंदाज़ करते हुए अपनी हामी भर दी थी कि नीता दूसरी जाति की थी. कुछ ही दिन बाद हमारी शादी हो गयी थी. बड़ी भाभी बेमन से उसमें शरीक हुई थीं और नीता, उसके परिवार तथा शादी की व्यवस्थाओं में बात-बात पर नुक्स निकालती रही थीं.

शादी के बाद मैं और नीता कुछ दिन भैया-भाभी के पास ही रुके. मैंने नोट किया कि नीता कुछ बुझी-बुझी सी रहती थी. उस दिन जब हम पास के पार्क में घूमने गये हुए थे तो मैंने उससे इसका कारण जानना चाहा. वह मेरे कंधे पर सिर रख कर रोने लगी और बोली — ''क्या हम यहां से आज ही वापस नहीं चल सकते?'' मैं सकते में आ गया था — ''क्यों क्या हुआ है? मुझे कुछ बताओगी भी.''

''क्या बताऊं, बड़ी भाभी बात-बात में मुझे नीचा दिखाने की कोशिश करती हैं. मैं जितना ही उनका दिल जीतना चाहती हूं, उतना ही वे मुझे यह अहसास दिलाने की कोशिश करती हैं कि उनके सामने मेरी और मेरे परिवार की कोई हैसियत नहीं है. यह बात भी वे कई बार दोहरा चुकी हैं कि तेरे पति को अगर हमने अपने पास रख कर पढ़ाया-लिखाया नहीं होता तो वह इस मास्टरी के भी क़ाबिल नहीं होता. कल तो उन्होंने हद ही कर दी, बोलीं — कैसा स्कूल है जिसने मास्टर को इतने दिन की छुट्टी दे दी. कब तक जाने का इरादा है. देखो, तुम्हारे बड़े भैया तो तुम्हें और रुकने को कहेंगे ही, पर सरजू को समझा देना कि नयी नौकरी में ज़्यादा छुट्टियां लेना ठीक नहीं है.''

बड़े भैया के रोकने और नाराज़गी दिखाने के बाद भी हम अगले दिन ही वापस चले आये थे.

क़रीब दो-तीन महीने बाद अचानक बड़े भैया और भाभी हमारे पास चले आये तो हम दोनों ही हड़बड़ा गये. महीने के आख़िरी दिन चल रहे थे और हाथ बहुत तंग था. मास्टरी की नौकरी में बस जैसे-तैसे गुज़ारा कर लेते थे. शुद्ध देसी घी हमारे लिए विलासिता से कम नहीं था. मुझे पता था, उसके बिना उनके गले से निवाला नहीं उतरेगा. वे पहली बार हमारे पास आये थे, हमने तय किया कि जहां तक हो सकेगा, हम उनकी सुविधा का ख़्याल रखेंगे. तंगी के चलते मैं बाज़ार से बस सौ ग्राम शुद्ध घी ही ला पाया जिसे हम सिर्फ़ उनके खाने में ही प्रयोग करते.

हमारे सारे प्रयासों के बाद भी उन्हें वह सुख-सुविधा नहीं मिल पा रही थी, जिसके वे आदी थे. दो दिन बाद ही उन्होंने वापसी का प्रोग्राम बना लिया. भाई साहब जब तांगा लेने के लिए गये हुए थे, तब नीता ने बड़ी भाभी से कहा था — ''थोड़े दिन और रुक जाते, हमें अच्छा लग रहा था.'' वे व्यंग्यपूर्ण ढंग से मुस्करायी थीं और बोलीं — ''तुम्हें तो अच्छा लग रहा है, पर हमारा क्या? ये दो दिन भी बड़ी मुश्किल से कटे हैं, मैं तो यहां दोबारा आने में सौ बार सोचूंगी.''

उसके बाद बड़े भैया जब भी आते. भाभी को साथ न लाने के लिए उनके पास कोई न कोई बहाना तैयार रहता. बहाना बनाते समय उनकी आंखें नीची होतीं तो हमारे मन में अजीब सी ऐंठन होने लगती.

सुहानी की शादी में उनका हाथ बंटाने की गर्ज़ से हम कुछ दिन पहले ही पहुंच गये थे. जब नीता ने बड़ी भाभी को यह बताया तो उन्होंने बड़ी बेरुखी से कहा था — ''आजकल तो सब काम घर बैठे ही हो जाते हैं, बस पास में पैसा होना चाहिए. तुम लोग शादी वाले दिन भी आते तो कोई फ़र्क

नहीं पड़ता.''

सुहानी की शादी में ही बड़ी भाभी ने अपने भैया से मिलवाया था — ''ये हैं, मेरे भैया. बहुत बड़े सरकारी अफ़सर हैं. पिछले महीने ही तुम्हारे शहर में ट्रांसफ़र होकर आये हैं.''

उन्होंने मुझसे तपाक से हाथ मिलाया था और बोले थे — ''चलो, उस शहर में अपना भी कोई है, यह जानकर बहुत अच्छा लगा.'' मैं कुछ बोलने ही वाला था कि बड़ी भाभी ने कहा — ''ये सरजू है, इनका सौतेला भाई. मिडिल स्कूल में मास्टरी करता है, वहां.'' मैं बड़ी भाभी को देखता ही रह गया था.

शादी होने तक मैं और नीता यह नोट करते रहे कि भाभी के अफ़सर भैया को जितना मान-सम्मान दिया जा रहा था, उतना ही हममें हीन भावना भरने की कोशिश की जा रही थी. अपने ही घर में बेगाने से रह कर हम शादी ख़त्म होते ही लौट आये थे.

वर्ष दर वर्ष निकलते चले गये, मैंने इस बीच प्राइवेट परीक्षा देकर बी. ए. पास कर लिया था और मुझे स्कूल में बड़ी क्लासेस पढ़ाने को दे दी गयी थीं. मेरी तनख़्वाह बढ़ गयी थी और ट्रस्ट ने मुझे दो कमरों का अच्छा-सा मकान रहने के लिए दे दिया था. तमाम व्यस्तताओं के बीच कभी-कभी बहुत मन करता तो बस एक-दो दिन के लिए हम बड़े भैया-भाभी से मिल कर लौट आते. कभी-कभी भैया भी हमारी खोज-ख़बर लेने चले आते. उनके साथ बड़ी भाभी को न देख कर शुरू में अजीब सा लगता, फिर धीरे-धीरे इसकी आदत पड़ती चली गयी.

सब कुछ अपनी सामान्य गति से चल रहा था कि उस दिन सुबह-सुबह आये एक फ़ोन ने पूरी तरह हिला कर रख दिया. मैं फ़ोन हाथ में लिये जड़-सा खड़ा रह गया. रात में बड़े भैया को दिल का दौरा पड़ा था और अस्पताल ले जाने से पहले ही उन्होंने दम तोड़ दिया था. मैं और नीता पहली बस पकड़ कर वहां पहुंच गये थे. बड़े भैया को निष्प्राण देख कर मैं अपने को संभाल नहीं पाया था. उधर बड़ी भाभी की दशा भी मुझसे देखी नहीं जा रही थी.

कमाने और उसे सुख-सुविधाओं पर ख़र्च कर डालने की अपनी फ़िलासफ़ी के कारण बड़े भैया ने बचत को कभी महत्व नहीं दिया था, यहां तक कि अपने लिए मकान भी नहीं बनाया था. किराये के इसी घर में रहना उन्हें ज़्यादा अच्छा लगता था. बड़े भैया के जाने के साथ ही कमाई का एकमात्र स्रोत भी चला गया था. बड़ी भाभी को अकेले छोड़ने का सवाल ही नहीं था. मैंने और नीता ने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे हमारे साथ चलें, पर उन्होंने अपनी बेटी सुहानी के साथ जाना पसंद किया था. उनके इस निर्णय से हमें कोई हैरत नहीं हुई थी क्योंकि सुहानी के पास वे सभी सुख-सुविधाएं मौज़ूद थीं जिनकी बड़ी भाभी आदी थीं. हां, इस बात का दुःख अवश्य हुआ कि उन्होंने हमें किसी क़ाबिल नहीं समझा था और बाद में भी कभी हमारे पास आकर रहने का संकेत तक नहीं दिया था.

देखते-देखते कितने ही वर्ष निकल गये. इस बीच मैंने कई बार बड़ी भाभी से फ़ोन पर संपर्क किया, पर हर बार उनके रूखे व्यवहार ने निराश ही किया. मैंने जब भी उनसे कुछ दिन हमारे पास आकर रहने के लिए कहा तो उन्होंने बड़ी ख़ूबी से उसे टाल दिया. जब मुझे यह पता चला कि वे बीच-बीच में काफ़ी समय के लिए इसी शहर में रहनेवाले अपने अफ़सर भाई के घर रह कर चली जाती हैं और हमसे संपर्क भी नहीं करतीं तो मुझे और नीता को बहुत बुरा लगा और उसके बाद हमने भी उन्हें फ़ोन करना बंद कर दिया.

आज बड़ी भाभी का अचानक यूं चले आना हमारे लिए किसी आश्चर्य से कम नहीं था. वे आयी भी हैं तो बस मेहमानों की तरह. कुछ ही दिनों में उनके अफ़सर भैया उन्हें लिवा ले जायेंगे और फिर न जाने कितने लंबे अर्से तक बड़ी भाभी की शक़्ल भी देखने को नहीं मिलेगी. हमें संतोष इस बात का था कि चलो चंद दिनों के लिए ही सही, उन्होंने हमारे पास आने के लिए सोचा तो था.

बड़ी भाभी के स्वभाव तथा उनकी जीवन शैली को ध्यान में रखते हुए हम यह पूरी कोशिश कर रहे थे कि उन्हें शिकायत का कोई मौक़ा न मिले. हम दोनों ने ही यह नोट किया कि बड़ी भाभी के स्वभाव में अब पहले जैसी तुर्शी नहीं थी. बड़े भैया के चले जाने के बाद का अकेलापन शायद उनमें यह बदलाव ले आया था. हर समय बड़बड़ करनेवाली और बात-बात में दूसरों को नीचा दिखानेवाली बड़ी भाभी की चुप्पी हमें असहज किये रहती.

दो सप्ताह निकल गये थे. बड़ी भाभी को लेने अभी तक उनके भाई नहीं आये थे और न ही उनका कोई फ़ोन

आया था. बड़ी भाभी को चिंता होने लगी थी. जब भी कोई फ़ोन आता, सबसे पहले वही उसे उठाने दौड़तीं, फिर मायूसी से फ़ोन हमें पकड़ा देतीं. एक बार मैंने उनसे कहा भी — ''बड़ी भाभी, आप उन्हें ख़ुद फ़ोन क्यों नहीं कर लेतीं? बड़े अफ़सर हैं, हो सकता है काम की व्यस्तता के कारण नहीं आ पाये होंगे. आप फ़ोन करके उनका हालचाल भी पूछ लो और उन्हें यह भी बता दो कि कोई जल्दी नहीं है, जब भी उन्हें फ़ुरसत मिले वे आपको ले जायें.''

''हां, तुम सही कह रहे हो, समय नहीं मिल रहा होगा, उसे. कुछ दिन और देखती हूं, फिर फ़ोन करूंगी.''

बड़ी भाभी को अपने भैया का इंतज़ार करते-करते एक महीने से ऊपर हो गया था. चिंता उनके चेहरे पर साफ़ झलकने लगी थी. अक्सर मैं स्कूल से लौट कर आता तो नीता मुझे बताती कि बड़ी भाभी ज़्यादातर अपने कमरे में गुमसुम पड़ी रहती हैं.

उस दिन मैं स्कूल से आकर सीधे ही उनके कमरे में पहुंच गया. पलंग पर लेटी बड़ी भाभी मुझे देखते ही उठ कर बैठ गयीं. मैंने उनसे कहा — ''बड़ी भाभी, कुछ दिन से आप काफ़ी गुमसुम नज़र आ रही हो. आपको यहां कोई परेशानी तो नहीं है? हमसे कोई ग़लती हुई हो तो बताओ.'' वे फिर भी चुप बैठी रहीं तो नीता ने कहा — ''शायद बड़ी भाभी को अपने भैया की चिंता हो रही है. अगर वो किसी कारण इन्हें लेने नहीं आ पा रहे हैं तो आप ही इन्हें उनके घर छोड़ आओ.''

''ठीक है, कल रविवार है, स्कूल की छुट्टी रहेगी, मैं कल इन्हें वहां छोड़ आऊंगा.'' यह कह कर मैं उठ खड़ा हुआ. अभी कमरे से निकल ही रहा था कि बड़ी भाभी के रोने की आवाज़ सुन कर रुक गया. वे घुटनों में सिर गड़ाये हिचकियां भर-भर कर रो रही थीं.

हम दोनों ही घबड़ा गये. नीता उन्हें संभालने लगी तो वे और भी ज़ोर से रोने लगीं और रोते-रोते ही बोलीं — ''मुझसे अब और नाटक नहीं होगा, कोई लिवाने नहीं आने वाला मुझे, न भैया न बेटी. अपनी बेटी के पास रहते-रहते कई वर्ष निकल गये तो आसपास के लोग, बेटी के रिश्तेदार और यहां तक कि ख़ुद दामाद जी पूछने लगे थे कि बेटी के ससुराल में आख़िर कब तक जमी रहूंगी मैं. उस दिन मैंने दामाद जी को सुहानी से यह कहते ख़ुद सुना — ''क्या हमारी कोई निजी ज़िंदगी नहीं है? कब तक तुम्हारी मां यहां टिकी रहेंगी? ज़िंदगी भर का ठेका ले रखा है क्या हमने?'' सुहानी ने कहा था — ''थोड़ा धीरे बोलो, मां सुन लेंगी.'' जवाब मिला था — ''सुन लेंगी तो अच्छा है, कुछ तो शर्म आयेगी बेटी के ससुराल में पड़े रहने पर.''

बेटी को और ख़ुद को शर्मिंदगी से बचाने के लिए मैं आज से सात महीने पहले ही यहां अपने भैया के घर आ गयी थी. उन्होंने हमेशा की तरह बहुत अच्छी तरह रखा, लेकिन जैसे ही उन्हें यह मालूम हुआ कि मैं कुछ दिनों के लिए नहीं, बल्कि हमेशा के लिए उनके घर रहने आ गयी हूं तो भैया-भाभी का व्यवहार बदलते देर नहीं लगी. वे अपने आचार और व्यवहार से मुझे यह संकेत देने लगे कि कुछ दिनों के लिए तो ठीक है, लेकिन, हमेशा के लिए उनके पास रुकना उनकी भलमनसाहत का फ़ायदा उठाने से ज़्यादा कुछ नहीं है. सब समझते हुए भी मैं यह जिल्लत की ज़िंदगी जीती रही. लेकिन, जब भैया-भाभी ने अकारण दो-दो दिन तक मुझसे बोलना छोड़ दिया तो मैं अपना सारा अहम छोड़ कर यहां चली आयी. सच कहूं कहीं एक आस थी कि भैया मुझे मनाकर ले जायेंगे, पर यह झूठी आस कब की ख़त्म हो चुकी है.'' हम स्तब्ध से सब सुन रहे थे. अपने अंदर दबे सच को बाहर निकालने के बाद, वे शायद राहत महसूस कर रही थीं. उनकी आंखों से बहते आंसू थम गये थे, लेकिन हमारी आंखें गीली हो आयी थीं. नीता ने उन्हें अपनी बाहों में भर लिया था और कहा था — ''बड़ी भाभी, अब तक क्यों सहती रहीं ये सब? पहले ही क्यों नहीं चली आयीं अपने घर?''

बड़ी भाभी की सूखी आंखों में फिर से आंसू भर आये थे और उन्होंने नीता को कसकर पकड़ लिया था.

४०२-श्रीरामनिवास, टट्टा निवासी
हाउसिंग सोसायटी, पेस्टम सागर रोड नं.३,
चेंबूर, मुंबई-४०० ०८९
मो.-९८३३४४३२७४

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

लघुकथा

दौड़

✍ मधु दीप

''भाई साहेब! अब मैं अपनी ज़िंदगी के बारे में आपको क्या बताऊं. चालीस साल पहले जब मैं गांव से इस शहर में आया तो बिल्कुल खाली हाथ था. न किसी से जान-पहचान और न सिर छिपाने का कोई ठिकाना. बड़ी मुश्किल से फतेहपुरी की धर्मशाला में दो दिन को छत मिली थी. मैं भी पक्का निश्चय करके आया था कि इस शहर से खाली हाथ कतई नहीं लौटना है, सो अगले दिन ही नया बाज़ार जा पहुंचा और जुट गया पल्लेदारी में. कमर पर बोरियां ढोयी हैं मैंने और आज मेरे पास सब-कुछ है. नया बाज़ार में अपनी दुकान है और मॉडल टाँउन में अपनी कोठी.''

''बात तो तुम्हारी ठीक है दोस्त! मगर अब भी तुम्हारी ज़िंदगी में ठहराव क्यों नहीं है? तुम इतने उखड़े हुए क्यों लग रहे हो?''

''नहीं तो...''

''देखो, जो कुछ तुम ज़ुबान से कह रहे हो तुम्हारी आंखें उसके ख़िलाफ़ बहुत कुछ बयान कर रही हैं.''

''हां, भाई साहब! तुमने मेरी चोरी पकड़ ली है. अब मैं तुमसे झूठ नहीं कह पाऊंगा. यह सच है कि आज मेरे पास सब कुछ है मगर यह उससे भी बड़ा सच है कि आज मेरा अपना कोई भी नहीं है.''

''तुम्हारा भरा-पूरा परिवार है.''

''यह सच है मगर यह भी झूठ नहीं है कि मेरा अपना कोई भी नहीं है.''

''ऐसा कैसे हो सकता है?''

''मैं सबके लिए सब-कुछ जुटाने के चक्कर में इस क़दर उलझा रहा कि मुझे पता ही नहीं चला कि कब सब मुझसे दूर चले गये. ख़ैर छोड़ो, तुम नहीं समझोगे.''

''नहीं दोस्त, मैं तुम्हारे बारे में बहुत पहले से ही सब-कुछ समझता हूं, जानता हूं. तुम भूल रहे हो, मैंने तुम्हें इस अंधी दौड़ में दौड़ते हुए कई बार टोका है, मगर तुम दौड़ते हुए इतना आगे निकल गये थे कि मेरी आवाज़ तुम तक पहुंच ही नहीं सकी. आज तुम दौड़ते हुए थक गये हो, इसलिए पकड़ में आ गये.''

''मैं नहीं जानता, इस दौड़ का अंत कहां होगा?''

''मगर मैं जानता हूं.''

''तो बताओ ना!''

''दौड़ना तो तुम्हें होगा ही मेरे दोस्त. मगर अब इस दौड़ की दिशा बदल दो.''

''क्या मतलब?''

''अब तक तुम अपने और अपनों के लिए दौड़ते रहे हो, अब से तुम दूसरों के लिए दौड़ो. देखना, तुम्हारे चारों तरफ़ फैला अकेलापन कैसे जादू की तरह ग़ायब होता है.''

मैं सिर उठाकर सामने देखता हूं मगर सामने की कुर्सी पर तो कोई भी मौज़ूद नहीं है...

दिशा प्रकाशन, १३३/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५.
E-mail : madhudeep01@gmail.com

कहानी

वरदहस्त

✍ राजा सिंह

कई एकड़ में फैले उस विशालकाय अस्पताल को देखकर मलय चकित और कुछ भयभीत –सा था. उस परिसर में फैली कई-कई मंज़िला इमारतें और उनके बीच सर्पाकार ढंग से पसरी सड़कें. उनमें विचरते उदास, बीमार, थके पस्त चेहरे. कर्मचारियों, वार्ड-बॉयों, नर्सों और डॉक्टरों के झुंझलाये बेतरतीब चेहरे. तीमारदारों के रोते झिझकते परेशान होते शरीर. वह सोचता रह गया कि दादा यहां से ठीक होकर निकल पायेंगे? स्थानीय डॉक्टरों के अनुसार जो कुछ हो सकता है यहीं पर हो सकता है. मलय अपनी पत्नी काजल के सहयोग से दादा को ले आ पाया था. दोनों बच्चे घर पर ही छोड़ दिये गये थे. नीरव एवं निशा दस एवं सात साल के अबोध बच्चे. समझा बुझाकर और जल्दी लौट आने का वादा करके, उन्हें घर पर ही ऐतिहात से रहने को कहा गया था. काजल ने बड़ी मासूमियत एवं शालीनता से उन्हें अकेले सावधानी से रहने के टिप्स दिये थे. उसने गाड़ी से दादा को काजल के सहयोग से गेट पर छोड़ा और गाड़ी पार्क करने के लिए चला. पार्किंग स्थल काफ़ी दूर था. वह पसीने से तरबतर जब गेट पर पहुंचा तो देखा दादा व्हीलचेयर पर बैठे थे और काजल उनके पास खड़ी उत्सुकता से उधर की ओर ही निहार रही थी, जिधर से वो आने वाला था. चलो यह अच्छा हुआ कि काजल ने दादा के लिए व्हीलचेयर बुक करवा ली थी. जिसके कारण दादा को ले चलने में बड़ी आसानी हो गयी. एडमीशन की सारी औपचारिकताएं पूरी हुईं और फिर उसके बाद डॉक्टर मिश्रा ने अपने कक्ष में उनका निरीक्षण करने के बाद उन्हें वार्ड एलॉट किया. मरीज़ को बेड पर लिटाते-लिटाते दोपहर के दो-ढाई बज गये और वे दोनों बेहाल हो गये थे. काजल को भूख-प्यास और दादा से ज़्यादा चिंता अपने बच्चों की थी. जब भी मौक़ा मिलता वह मोबाइल से घर संदेश भेजती और बातचीत करती-करती संतुष्ट हो जाती. फिर कुछ याद आता तो फिर अपने बच्चों में जुट जाती. यह सब करते हुए भी वह दादा का साये की तरह ख़्याल रखे हुए थी. मलय, भागदौड़ आदि में लगा था. फ़ाइल बनवाना, टेस्ट करवाना, डॉक्टर को दिखाना, पैसे जमा करना आदि. अब बेड पर दादा को लिटाकर कुछ चैन महसूस कर रहा था.

काजल घर जा चुकी थी और वह बेड के पास स्टूल पर बैठा दादा को इस मरणासन्न स्थिति में देख रहा था. उनको ग्लूकोज़ चढ़ाया जा रहा था और उसी के साथ दवाइयां आदि दी जा रही थीं. मलय के दिमाग़ ने काम करना बंद कर दिया था. वह सिर्फ़ दादा को देखे जा रहा था. वह डर रहा है. उसे लगता है कि दादा की मौत इतनी क़रीब है कि शायद वह उनके बग़ैर ही वापस घर लौटेगा.

□

... मलय घिरा हुआ है. एक पुराने टूटे-फूटे मकान में क़ैद है. उसके शरणदाता बुज़ुर्ग दंपति हैं. दयालू हैं इसलिए उसे न निकलने की सलाह भी दे रहे हैं. बाहर एक भीड़ है. दस बारह विद्यार्थी थे. उनका नेतृत्व कर रहा है हरीश पांडे. उनके कॉलेज़ का यूनियन लीडर. लगातार धमकियां दिये जा रहा है. बाहर निकलने के लिए उकसा रहा है, गाली गलौज की इंतहा हो रही है. वह सहमा सिकुड़ा और भयभीत अपने किये कृत्य पर पछता रहा है परंतु उसके कृत्य की इतनी भयंकर प्रतिक्रिया होगी वह अंजान था.... वह और रागिनी सहपाठी थे सेंट जॉन स्कूल

के और हरीश पांडे था रागिनी के मोहल्ले का एक उद्दंड लड़का, जो एक स्थानीय इंटर कॉलेज़ में यूनियन लीडर था. इसका भान मलय को नहीं था. उसके सामने उस पांडे ने रागिनी को छेड़ा. उसकी कलाई पकड़ कर खड़ा हो गया और अपने प्यार का इज़हार करने लगा. इससे रागिनी कसमसा रही थी अपने को छुड़ाने के लिए बलपूर्वक प्रयत्न कर रही थी. उसका चेहरा लाल हो आया और अपमानित होने के कारण बेचारगी में वह इधर-उधर देख रही थी. पांडे बेक़ाबू होता जा रहा था और अपने को स्वीकार कर लेने का ज़बरदस्त बलपूर्वक आग्रह करता ही जा रहा था. स्कूल से निकलते मलय ने यह नज़ारा देखा तो अपने आप को क़ाबू में न रख सका. उसने पांडे की ज़बरदस्त धुनाई कर दी और रागिनी को छुड़ाया. रागिनी रिक्शा करके अपने घर चली गयी और वह खरामा-खरामा पैदल ही अपने घर चल पड़ा. उधर पांडे भाग कर अपने स्कूल पहुंचा और अपने साथ कई साथियों को लेकर अपना बदला लेने, मलय को आता दिखायी पड़ा. वह भाग खड़ा हुआ. छात्रों की भीड़ उसके पीछे-पीछे उसे दौड़ाती हुई. मलय को अचानक एक मकान खुला दिखायी पड़ा और उसने उसमें घुसकर अपनी जान बचायी. परंतु जान पर संकट अब भी बना हुआ था... वह उस मकान में क़ैद है और बाहर दुश्मनों का पहरा चल रहा है. समय बढ़ता जा रहा है और शिकंजा कसता जा रहा है. अचानक वह अश्रुमिश्रित ख़ुशी से झूम उठा. दादा अपने कुछेक साथियों के साथ वहां आते नज़र आये. उनके हाथों में देशी कट्टे थे और रामपुरी. उनका एक चेला लट्ठ भी हाथ में लिये था. दादा को देखते ही भीड़ कुछ छंटने लगी थी और हरीश हतप्रभ था. उसे आभास नहीं था कि मलय गोपाल पंडित का भाई है. पांडे ने अपने क़दम वापस किये परंतु उसने दादा से उसकी जमकर शिकायत की जिसके फलस्वरूप मलय को रास्ते भर दादा की हिदायतें सुननी पड़ीं और उन्होंने लौंडियाबाजी से तौबा करने की सलाह दी. दादा इतने ग़ुस्सा थे कि सिर्फ़ उनका हाथ नहीं उठा था उस पर. मलय अपनी सफ़ाई में कुछ भी न कह पाया. उनके विशालकाय डरावने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से वह हर समय सहमा रहता था.

□

नर्स ने दादा का बी. पी. नापा, ग्लूकोज़ ड्रिप की बोतल ख़त्म हो गयी थी उसे बदला, टेम्परेचर नोट किया. सारी इन्ट्री उसने कार्ड में की और पेशाब वहीं पर निकलने के लिए दादा के नली फिट करके बोतल वहीं लटका दी और चली गयी. मलय देखता रह गया. दादा के कृशकाय शरीर को. मलय को भूख लगने लगी थी. सुबह से ही चल पड़ा था, यहां जल्दी न आओ तो एडमीशन मिलना मुश्किल. अब दादा को अकेले छोड़कर कैसे जाये?

... दादा यानी कि गोपाल शास्त्री उर्फ गोपाल पंडित पिता राम अधार शास्त्री की पहली संतान. मां-बाप के लाड-दुलार से बिगड़ी संतान, पढ़ने-लिखने से परहेज करने वाले. कई बार इम्तहान देने के बाद भी हाईस्कूल पास नहीं कर पाये. माता भगवती देवी को गोपाल के लिए एक भाई चाहिए इस कारण उसके बाद तीन-तीन लड़कियां होती चली गयीं तब जाकर मलय का जन्म हुआ. शास्त्री जी को दूसरा बेटा मिला और गोपाल को भाई. श्रीमती शास्त्री का भी लॉज़िक अजीब था. गर एक लड़का साथ न दे तो कम से कम दूसरा तो हो जो बुढ़ापे में ख़्याल रख सके. श्री शास्त्री का धंधा पुस्तैनी था पंडिताई का और कुछ ज्योतिष का काम भी देख लेते थे. पंडिताई की आमदनी से घर का ख़र्चा आसानी से चला जाता था. गोपाल बिगड़ता ही चला गया और कॉलेज़ समाप्त होने पर मोहल्ले की गुंडागर्दी चालू हो गयी थी. कुछेक चेले-चपाड़े जुट गये थे. तीन-चार घर के बिगड़े लड़कों का समूह बन गया. घर सिर्फ़ भोजन और रहने का अड्डा था. उसमें भी कभी-कभी आना, कभी न आना दिनचर्या में शामिल था. पिता जी की मार-डांट ख़त्म हो चुकी थी. उस पर एक बार गोपाल तन कर खड़ा हो गया और उनका हाथ पकड़ लिया था. शास्त्री जी चाहते थे गोपाल का यदि पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता तो

परिचय

०२ अगस्त १९६३ (कानपुर);
एम. एस-सी. (जंतु विज्ञान).

: प्रकाशन :

कई कहानियां एवं कविताएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, जैसे 'हंस,' 'कथाक्रम,' 'पाखी,' 'चिंतन दिशा,' 'बया,' 'उद्‌भावना,' 'लहक,' 'हरिगंधा' आदि.

: संप्रति :

भारतीय स्टेट बैंक में प्रबंधक.

लोफ़रबाजी बंद करके उनके पुस्तैनी धंधे को अपना ले और उसकी तरह सफल ज़िंदगी गुज़ारे. परंतु गोपाल ने न पढ़कर दिया और न पंडिताई का धंधा अपनाया. वह इस धंधे से एक तरह से नफ़रत करता था और इसे भिखारी धंधा बताता था. माता ने सोचा उसकी शादी कर दी जाये जिससे वह सुधर जायेगा. ज़िम्मेदारी पड़ने एवं उसके प्रभाव से वह अपना धंधा अपना लेगा. परंतु गोपाल ने शादी से साफ़ इंकार कर दिया कहा — ''अपने पेट का तो जुगाड़ नहीं है ग़ैर का पेट कहां से भरेंगे? अपन तो ऐसे ही मस्त हैं. जोरू न जाता अल्ला मियां से नाता.'' अल्ला-खुदा का नाम सुनकर पंडित जी, बिफर जाते थे. सनातन धर्म के संस्कारों और पुराने नियम क़ायदे और पंडिताई से घर का हर काम चल रहा था, सिर्फ़ गोपाल को छोड़ कर. वह नास्तिक कुलबोरन है ऐसा माता-पिता का मानना था. पंडित जी ने गोपाल से पूरी तरह से अपने को असंपृक्त कर लिया था. जैसे कि इस घर में उसका कोई अस्तित्व ही न हो. मलय के लिए बड़ा भाई दादा और बड़ी बहनें दीदी थीं जो उसे बेइन्तहा प्यार करते थे. अक़्सर कहते थे — शास्त्री खानदान का चिराग मलय ही रौशन करेगा और आगे बढ़ायेगा, मैं तो निरर्थक हूं. रामाधर शास्त्री घर के मुखिया ज़रूर थे परंतु हुकूमत गोपाल शास्त्री की चलती थी. वे तो बिगड़ गये थे मगर कोई और घर का बिगड़ न जाये इसकी पूरी ठेकेदारी उन्होंने स्वयं ले रखी थी. अनीता को नृत्य, सुनीता को गायन और रीता को वादन नहीं लेने दिया. उनके अनुसार ये तीनों विषय ठीक नहीं हैं. घर को कोठा नहीं बनाना है घर से स्कूल कॉलेज़ और वापस स्कूल समय से घर आना, सभी भाई बहनों पर उनकी नज़र रहती थी. अनावश्यक देर होने पर उनकी बड़ी पूछताछ से गुज़रना पड़ता था जो सभी लोगों को नागवार गुज़रता था, परंतु सभी विवश थे. उन पर लगाम कसने में पिता उनसे पस्त हो चुके थे. परंतु इस मामले में माता जी पिता जी उनके साथ थे. बड़े भाई के रूप में वह पुरातन पंथियों की तरह से पूरी तरह सख़्त थे. स्नातक होने पर हर बहन की शादी उच्चकुल में योग्य वर से ही हो रही है, यह वह सुनिश्चित कर लेते थे. वरना उनका हस्तक्षेप निश्चित था. अनीता, सुनीता एवं रीता की शादी हो जाने पर वह मुक्त हुए जैसे कि बहुत बड़ा बोझ उनके सर ही था. हालांकि सारा कार्य और पैसों का प्रबंध पिताजी ने संपन्न किया परंतु इंतज़ाम दादा का था. उनका इतना रुतबा था कि जो काम शास्त्री जी सौ में करवाते वह पचास रुपये में हो जाता. पंडितजी ने तीनों लड़कियों की शादी के बाद एक बार फिर प्रयास किया कि गोपाल की शादी हो जाये जिससे उसकी भी गृहस्थी बस जाये और ज़िम्मेदारियां पड़ने से वह लाइन पर आ जाये. परंतु दादा ने साफ़ मना कर दिया और मलय की शादी कर देने का सुझाव रख दिया, जिसे मलय ने पूरी तरह नकार दिया और ज़िद कर बैठा- पहले बड़े की फिर छोटे की इसमें कोई समझौता नहीं. मामला घिसटता रहा...

□

काजल घर से आ गयी थी. सायं के पांच बजे थे. काजल ने भी खाना नहीं खाया था, दोनों ने मिलकर खाना खाया. दादा का खाना तरल रूप में दिया जा रहा था. दादा जो हरदम इस बात का ख़्याल रखते थे कि काजल का मुंह न दिख जाये, उसके सामने हरदम घूंघट में रहे, आज असहाय थे.

... शादी के दूसरे दिन काजल दीदियों से वार्तालाप में व्यस्त थी. काजल की आवाज़ की गति और ध्वनि सामान्य ही थी. दादा बैठक में बैठे थे. एक दो शिष्य भी थे. पंडित जी की दुकान जो बैठक में सजती थी जहां पर वह अपने यजमानों से मिलते थे और उनकी समस्याओं के समाधान बताते थे, उस पर दादा ने अधिकार कर लिया था. पंडित जी ने बिना किसी विरोध के अपना कार्य हनुमान मंदिर के प्रांगण में स्थापित कर लिया था. काजल और बहनों की आवाज़ छनछन कर बैठक में आ रही थी. उन्होंने शिष्यों को भी विदा किया. दादा गरजे और मनु को तलब किया.

दो दिन भी आये हुए नहीं और बहू की आवाज़ यहां तक सुनायी पड़ रही है. उसे समझा दो ऐसा बोले कि आवाज़ सुनायी न पड़े, समझे. उन्होंने मलय को बहुत ही धीमे से आदेशित स्वर में समझाया.

''जी दादा, मलय ने इतना ही कहा. परंतु वह नाख़ुश था, दादा के इस निर्णय से और उसने काजल से कुछ भी नहीं कहा. परंतु काजल अपने आप समझ गयी. शायद रीता ने कुछ इशारा किया था. उसके बाद दादा को कभी काजल की आवाज़ नहीं सुनायी पड़ी. दादा को खाना-पीना आदि देना भी बेआवाज़ ही होता रहा था.

मलय एम. एससी. फ़ाइनल इयर में था और उसकी

बैचमेट थी विजया एक दक्षिण भारतीय लड़की. जंतु विज्ञान प्रयोगशाला में एक अलमारी, दराज आवंटित थी. प्रीवियस इयर से वे दोनों साथ-साथ थे. निकटता बदल रही थी अंतरंगता में. मलय उसकी सुंदरता एवं भारतीयता से प्रभावित था और वह भी उसके सुदर्शन व्यक्तित्व से आकर्षित थी. परंतु उसके इस मेल-जोल में बाधक एक खलनायक था. उन्हीं के साथ पढ़ने वाला एक लड़का समर सिंह. जिसके संबंध बाहर के रहने वाले गुंडों से थे. जिसके कारण सभी उससे भय खाते थे. उससे उलझने का मतलब था कॉलेज़ के भीतर या बाहर अपनी पिटाई करवाना. समर सिंह विजया पर अपना अधिकार समझता था. उसने उसे अपनी धर्म बहन बनाकर उससे संबंध बना रखे थे. वह विजया के घर भी आता-जाता था और उसके घरवालों से कॉलेज़ में उसके संरक्षक की भूमिका ले रखी थी. समर सिंह ने आवरण भाई का ओढ़ रखा था परंतु आंतरिक रूप से वह विजया का प्रेमी था. विजया को हासिल करने में मलय एक बाधा के रूप में उभरता जा रहा था. उन दोनों का साथ तोड़ना ज़रूरी था और इसके लिए मलय को डरा धमका कर अलग करना ज़रूरी था. एक दिन मलय को अकेले कॉलेज़ कंपाउंड में समर सिंह और उसके बाहरी साथियों ने एक कोने में समेट लिया.

''विजया से बहुत चिपक रहे हो? अच्छा नहीं है. अपना भला चाहते हो तो उसको छोड़ दो.''

''आपसे क्या मतलब? आपने तो उसे बहन बना रखा है.'' मलय बहस करने लगा.

''यह भी एक तरीक़ा है पास आने का अपना बनाने का. यह बात अच्छी तरह जान लो वह मेरी है. कोई उस नज़र से देखेगा तो आंख निकाल लेंगे.'' समर सिंह क्रोध में था.

''कोई माई का लाल विजया से जुदा नहीं कर सकता.'' मलय भी आवेश में आ गया था.

उसे दादा की शक्ति का ग़रूर था. लल्लू सिंह वैसे भी उससे खफ़ा था. एक बार उसने उसकी दराज की चाबी मांगी थी परंतु उसने मना कर दिया था. वह जानता है कि तीस से सौ प्रतिशत अल्कोहल की बोतलें जो उसकी दराज में रखी थीं जिनका उपयोग ऑब्जेक्ट के डिहाईड्रेशन करके स्लाइड बनाने के लिए किया जाता था. अल्कोहल पूरे साल के लिए आवंटित कर दिया जाता था. वह जानता था कि लल्लू अल्कोहल लेकर पानी मिला कर अपने नशे के लिए इस्तेमाल करेगा. अक्सर वह ज़बरदस्ती बाहर से आकर ऐसा किया करता था उसने उसकी मांग ठुकरा दी थी. लल्लू सिंह उससे तबसे चिढ़ा बैठा था. उसको किसी ने ऐसा मना नहीं किया था. समर सिंह और लल्लू सिंह ने उस पर प्रहार कर दिया और उसे बुरी तरह से पीट दिया. एक बार फिर चेतावनी दी, ''अगली बार ज़िंदा न छोड़ेंगे.''

मलय अपमानित, प्रताड़ित और चोटिल फिर क्लास में न गया. वह सीधे अपने घर आ गया और दादा से सारा क़िस्सा बयां कर दिया. दादा उसी वक़्त उसके साथ वापस कॉलेज़ चल दिये. वे समर सिंह एवं लल्लू से मिले. उनसे मिलकर पूरी कहानी समझी. पूरी बातचीत के दौरान वह गंभीर और शांत बने रहे, एक गार्जियन की तरह. वापस आते हुए वह मलय पर पूरी तरह बिगड़ रहे थे — ''मना किया था लौंडियाबाजी के चक्कर में मत पड़ो. मानते नहीं हो. परिणाम देखा. ख़बरदार यदि भविष्य में उस लौंडिया के साथ रहे, तो सबसे पहले मैं तुझे तोडूंगा. पढ़ने-लिखने वाले लड़के हो, पढ़ाई में ध्यान दो. पिताजी से कह दूंगा सबसे पहले तुम्हारी शादी का इंतज़ाम करें.

वह रुआंसा हो आया था. उसे मारपीट का इतना दुख नहीं हुआ जितना कि दादा का उसका अपमान हल्का लेना. मगर दादा ने बदला लिया था. अगले दिन जब वह कॉलेज़ गया तो ख़बर सुनाई पड़ी कि समर सिंह और लल्लू सिंह को रात में अज्ञात लोगों द्वारा हॉकी और चाकू से हमला करके बुरी तरह से घायल कर दिया गया है और वे दोनों अस्पताल में भर्ती हैं. सिर्फ़ जान बच गयी थी. विजया दुखी थी जब मलय पिटा था. समर सिंह को शह उसके पिता द्वारा मिली थी. वह गर्व से घर में बता रहा था कि अब मलय विजया का साथ छोड़ देगा. वह फिर दुखी हुई जब उसने समर सिंह को घायल सुना, उसका धर्म भाई उसकी वजह से हॉस्पिटल में है. वह समझ रही थी कारण वह है. मलय को बदला मिल गया था परंतु उसे विजया को छोड़ना पड़ा था. वह दादा की अवहेलना नहीं कर सकता था. विजया ने भी उससे किनारा कर लिया. आज मलय सोचता है, अच्छा ही हुआ काजल जैसी पत्नी कोई और नहीं हो सकती थी ख़ूबसूरत, बुद्धिमान, सलीकेदार और केयरिंग. इसके अलावा उसमें समझदारी बहुत है. इस बात के लिए वह दादा का कृतज्ञ है.

कविता

(दिल्ली में एक किसान की आत्महत्या पर...)

नीम का पेड़

✍ डॉ. अमरेंद्र मिश्र

वहां एक नीम का पेड़ है
एक शख़्स ने लटककर की आत्महत्या
पेड़ ने विरोध जताया अपनी छाया संग
छाया हो ली साया संग.
राहगीर कहने लगे उसे भुतहा पेड़
सुना है, रात के वक़्त कोई पुकारता है
और कई आवाज़ें पीछा करती हैं
उस एक आवाज़ की...
अब वहां एक चुप ख़ामोशी बोलती है.
साया उसके साथ डोलती है.

संपादक 'समहुत',
४/५१६, पार्क एवेन्यू, सेक्टर ४,
वैशाली, गाजियाबाद-२०१०१०.
मो.: ९८७३५२५१५२

लघुकथा

खेल

✍ सुरेश सौरभ

बात पुरानी है, एक गांधीवादी पार्टी ने बड़ी रैली की, विषय किसानों का हक़ दिया जाये. अति वृष्टि, ओला वृष्टि से बर्बाद फ़सलों का मुआवज़ा दिया जाये. रैली सम्मेलन में तब्दील हो गयी, मुख्यमंत्री और उनके चमचे-चपाटे मंच पर केंद्र सरकार को पानी पी-पी कर कोस रहे थे, तभी एक मुंहज़ोर चमचे ने एक किसान को उकसाया कि पेड़ पर चढ़ कर फांसी लगाने का नाटक करे. मीडिया का ध्यान आकर्षित करे. किसान नाम का भूखा था, फ़ोटो छपाने का क्षुधातुर था, पेड़ पर चढ़ा, फंदा लगाया, अपने गले में डाला. पार्टी के लोग उसकी ओर दौड़े. किसान ने नाटक शुरू किया – बचाने वालों ने नाटक शुरू किया, फंदा लगा कर फांसी लगाने की कवायद ज़ारी थी. पर, पर यह क्या? डाल से पैर फिसला, गर्दन डाल में झूलने लगी, अरे! पकड़ो, अरे! अरे! उतारो अरे... अरे.. यह क्या किया ... जीभ लटक गयी खेल ख़त्म...

मुख्यमंत्री ने अपना भाषण बीच में छोड़ दिया. कहा – "ग़लत हुआ."

गांधीवादी पार्टी पर तमाम विपक्षी पार्टियों ने हमला बोला. मीडिया वालों ने बखिया उधेड़नी शुरू की. मुख्यमंत्री को और उनके चमचों को जवाब देते नहीं बन रहा था – कि उनकी ही पार्टी के कार्यकर्ता ने उनके सामने मीडिया के सामने कैसे फांसी लगा ली. तब तक नेपाल में भूकंप आ गया, हज़ारों के मरने, घायल होने की ख़बरें और भूकंप का हाहाकार-चीत्कार मीडिया में छा गया, किसान की फांसी का नाटक सभी भूल गये, सिर्फ़ भूकंप सबको याद रहा.

मो. निर्मलनगर, हाथीपुर, उत्तरी लखमीपुर-खीरी (उ. प्र.)
मो. : ७३७६२३६०६६

□

दादा का शरीर सूज रहा था. हालत बिगड़ रही है वह दौड़कर नर्स के पास गया. नर्स ने आकस्मिक डॉक्टर से संपर्क किया. रात के १२ बजे थे और भाई को डायलेसिस पर रख दिया गया. दादा का डायलेसिस हो रहा था और वह अनिश्चय की आशंका से ग्रस्त भीतर ही भीतर सिहर रहा

था. दादा की दोनों किडनी ख़राब हो गयीं, वह पहले भी डायलेसिस करवाने दादा को लेकर आता रहता था. ... पहले हफ़्ते में, फिर महीने में, और तीन-तीन महीने में यह प्रक्रिया दोहरायी जाती थी. अभी कुछेक दिनों पहले ही वह दादा की डायलेसिस करा के गया था. अब अचानक यह क्या हो गया?

डायलेसिस का काम समाप्त हो चुका था और दादा को वापस इमरजेंसी वार्ड में शिफ़्ट कर दिया गया. मलय दादा के बेड के पास ज़मीन पर चादर बिछाकर लेट गया. रात के दो बजे थे और वार्ड में सन्नाटा नदारत था. कोई न कोई दर्द से कराह अवश्य रहा था. अलबत्ता दादा को कुछ आराम आ गया था और वह सो रहे थे. मलय भी सोने की कोशिश कर रहा था, परंतु नींद नहीं आ पा रही थी. थकावट बहुत लग रही थी वह टूट रहा था, झपकी आ-आ कर चली जा रही थी.

□

... गोपाल पंडित बाहर के लिए एक भय की हस्ती और घर के लिए सुरक्षा कवच. मजाल है कि कोई घर की तरफ़ बुरी निग़ाह से देख सके. वे सभी पर नज़र रखते थे परंतु उनका दुलारा था मलय, मनू. पिताजी बूढ़े हो चले थे उनकी पंडिताई की आमदनी कम हो रही थी. घर किसी तरह घिसट रहा था. दादा अपनी दुनिया में मगन थे. मलय के एम. एससी. करने के बाद, नौकरी करके अपने पैरों पर खड़े होने की बात कही थी पिताजी ने, परंतु मलय पी-एच. डी. करना चाहता था. पंडित जी आगे की पढ़ाई का ख़र्चा उठाने में असमर्थ थे. उनकी सारी जमा पूंजी तीनों लड़कियों की शादी में स्वाहा हो चुकी थी. दादा के लिए अब तो घर का ख़र्च चलाना भी मुश्किल हो रहा था.

सारा पी-एच. डी. का प्लान चौपट हो रहा था, हालांकि यूनीवसिर्टी से गाइड डॉ. विशेश्वर श्रीवास्तव की स्वीकृति आ गयी थी और विषय 'मछलियों पर नशे का प्रभाव' भी स्वीकृत था. मनू को पढ़ाई पर ख़र्च का कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था. दादा को पता चलने पर उन्होंने मनू की पढ़ाई का ख़र्चा उठाने का शर्तिया ऐलान कर दिया. सभी आश्चर्यचकित थे जो अपना ख़र्चा नहीं चला पा रहा था, या कैसे चला रहा था और किस ढंग से चला रहा था, कुछ पता नहीं? सब उसके कार्यकलापों से असहमत थे. इस तरह से की आमदनी से मनू की पढ़ाई होगी? राम-राम कहते पंडित और पंडिताइन दुखी, निराश और असहाय थे. परंतु मलय को सिर्फ़ अपनी मंज़िल दादा के सौजन्य से पास आती दिखायी पड़ी थी. दादा ने अपना वादा निभाया. शोधकार्य में धन की कमी आड़े नहीं आयी थी. मलय दादा के प्रति अनुगृहीत हो उठा था. दादा मनू की हर सफलता पर हर्ष के अतिरेक में डूब जाते थे. ख़ुश सभी होते थे... पिताजी, माताजी और दीदियां तो मलय की हर क्लास टॉप कर जाने की अभ्यस्त हो चुकी थीं. परंतु दादा को अपनी पढ़ाई के अनुभव को ध्यान में रखते हुए उसके अव्वल दर्जे से पास होने की बेहद ख़ुशी होती थी और अपनी ख़ुशी को सभी को मिठाई बांटकर मनाते थे. जैसे कि वह ख़ुद कॉलेज़ टॉप करके पास हुए हों. उसे याद आता है जब उसको डिग्री कॉलेज़ में लेक्चरशिप की नौकरी मिली तो ऐसा लगा कि दादा की ही नौकरी लगी हो. कई दिनों तक दादा ने जश्न का माहौल बनाये रखा था और जब उन्हें यह पता चला कि मलय की नौकरी दूसरे शहर में है तो वह बुझ से गये थे. इस बात से नहीं कि मनू की नौकरी से उन्हें कुछ फ़ायदा पहुंचेगा, परंतु इस बात से कि मनू अब बिछड़ जायेगा और दूसरे शहर में बिना उनकी छत्र-छाया के कैसे निर्बाध जीवन यापन कर पायेगा? मलय के नौकरी पर जाते समय अपने सर पर मनू का हाथ रखवाते हुए यह वादा ले लिया था कि वह किसी भी परेशानी में अपने दादा को ज़रूर याद करेगा. मनू को विदा करते हुए उनकी आंखों की कोरें गीली हो गयी थीं, जो अनीता, सुनीता एवं रीता की विदाई पर न हुईं.

मलय ने दादा के लिए एक प्राइवेट रूम बुक करवा दिया था. आज ही शिफ़्ट किया गया था. इसमें अकेले वह अच्छी तरह से दादा की देखभाल कर पायेगा और शायद डॉक्टर नर्स भी ज़्यादा ध्यान देंगे, ऐसी उसकी मान्यता थी या जानता था. दादा की तबियत उसे कुछ ठीक लग रही थी. उन्होंने उसे देखा था और हल्के से कुछ बोलकर इशारा भी किया था.

□

दादा मलय के जाने से निर्द्वंद हो गये थे. उनकी असामाजिक गतिविधियां बढ़ गयी थीं. पंडित जी निरुपाय थे और पंडिताइन भगवान भरोसे हो गयी थीं. दादा का थाने और जेल जाना बढ़ गया था पंडित जी जमानत करवाने और कोर्ट कचहरी में चक्कर लगाते निढाल होते जा रहे थे. अचानक एक क़त्ल के इल्जाम में दादा को लंबी जेल हो

गयी. उनको छुड़ाने के ख़र्चे में घर भी गिरवीं हो गया. पंडित जी चल बसे. उनके अंतिम क्रियाकर्म के लिए दादा जेल से जमानत पर आये और फिर चले गये. कुछेक दिनों के भीतर माता भी परलोक सिधार गयीं. वह किसी भी हालात में मलय के साथ जाने को तैयार नहीं हुई. अपनी देहरी का मोह और दादा का ख़्याल उनसे छूटा नहीं. अपने घर में मलय के लिए कुछ नहीं रह गया था. माता पिताजी रहे नहीं और दादा जेल में, बहनें अपने-अपने घर में.

दादा जेल से छूट कर आ गये. घर क़र्ज में डूबा हुआ. आमदनी नगण्य थी और संगी-साथी बेसहारा होने के कारण कहां मर-खप गये पता नहीं था. दादा अकेले निराश और हताश फिर भी हार नहीं मानी. जेल काट आने के कारण रुतबा बढ़ गया था परंतु अब मन नहीं लगता था. जेल में की गयी कमाई ने एक आधार फिर प्रदान कर दिया था और ब्याजू पैसा बांटने का काम फिर चल निकला. एक नया साथी छविराम, उनसे आ मिला था और कुछ दादागिरी का भी काम चलने लगा था. परंतु इसके बाबजूद सब कुछ बेमन से चल रहा था. जेल प्रवास ने उनको मन और शरीर से पूरी तरह तोड़ दिया था. मदिरा की शरण में पूरी तरह आ गये. खाना-पीना होटल आदि के कारण स्वास्थ्य भी ख़राब रहने लगा. शाम होते ही मदिरा चल निकलती थी और देर रात तक सिमटती नहीं थी. मनू एक बार आया दादा से मिलने और सब काम छोड़कर साथ चलने के लिए कहा, नहीं माने. अपनी ज़िंदगी ख़ुद जिऊंगा, किसी के सहारे नहीं. शायद नाराज़ थे कभी मनू जेल में मिलने नहीं आया. ... मलय को ख़बर मिली कि दादा सख़्त बीमार हैं. हॉस्पिटलाइज़ हैं. उसे पता चला कि अत्याधिक शराब पीने और अगड़म-बगड़म खाने से उनका लीवर ख़राब हो गया है. मनू जुट गया था दादा का इलाज़ करवाने में. वह करीब १५-२० दिन रुका था और दादा को स्वस्थ कराकर ही घर लाया. अब की बार मनू दादा को समझाने में कामयाब हुआ था. वह उनके साथ बरेली में रहें. कोई काम करने की ज़रूरत नहीं है सिर्फ़ आराम से रोटी खायें और घर में अपनी छत्रछाया बनाये रखें. कानपुर का मकान बेच दिया गया और सारा कर्ज़ निपटा कर पुराने शहर को अलविदा कह दिया गया.

सब लोगों के साथ रहने से दादा का अकेलापन दूर हो गया और एक बार फिर उन्हें ज़िंदगी अच्छी लगने लगी थी. नीरव और निशा के रूप में उन्हें अपना बचपन लौट आया लगता था. बच्चों के लिए ताऊ जी सबसे बड़े थे जिनसे मम्मी एवं डैडी की भी शिकायत की जा सकती थी और अपनी ज़िद पूरी करवायी जा सकती थी. काजल को कुछ अटपटा ज़रूर लगा था परंतु एक सुरक्षित माहौल के अहसास ने उसको सहज कर दिया था. मलय प्रोफ़ेसर हो गया था इसलिए उसे एक बंगला एलॉट था जिसका प्रथम कमरा दादा को दे दिया गया. उस कमरे का एक दरवाज़ा पीछे की तरफ़ खुलता था जिससे दादा मुख्य हाल में आ जाते थे. दादा का खाना-पीना और आवश्यक दिनचर्या उस कमरे से सटे कंबाइन्ड लैट्रीन-बाथरूम में हो जाती थी. थोड़े दिनों बाद दादा ने अपना ब्याजू का धंधा फिर चालू कर दिया था. पास में ही रेलवे कॉलोनी थी जिससे उनका धंधा चमक उठा था. मनू ने भी कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि आख़िर आदमी कुछ तो करेगा, इतना सारा टाइम कैसे कटेगा? कुछ तो बिज़ी रहने का साधन होना चाहिए था. इसी बहाने कुछ पैसे आ जाते थे, जिससे उनको यह अहसास था कि वह किसी पर बोझ नहीं हैं. इसी कारण उनमें संतोष का भाव रहता था.

□

आज डॉक्टर से हुई बातचीत के बाद मलय अस्थिर हो गया. उसने पत्नी से कहा, ''अब नहीं रुका जाता.''

''बात क्या हो गयी... क्या हालत और बिगड़ रही है?''

''हां.''

डॉक्टर ने कहा है कि कोई एक किडनी डोनेट कर दे तो बच सकते हैं. ... मैं निर्णय नहीं ले पा रहा हूं.

''क्या निर्णय लेना है?''

''मैं दादा को अपनी एक किडनी डोनेट करना चाहता हूं. शायद बच जायें.''

''शायद... ! क्यों?''

''डॉक्टर ने संभावना व्यक्त की है कि हो सकता है कि पेशेंट की बॉडी दूसरे की किडनी एक्सेप्ट न करे. अगर एक्सेप्ट भी कर लेगी तो भी ज़्यादा से ज़्यादा ५-६ साल ही चल पायेंगे.''

''ऐसा क्या... ? फिर आपका एक किडनी से काम चलेगा. कब तक? अगर आपकी एक किडनी ख़राब हो गयी तो आपके लिए कहां से आयेगी?''

मलय चुप है और सोच में पड़ जाता है.

''देखिए.... दादा के बाद उनके पीछे कोई नहीं है मगर आपको कुछ हो गया तो आपके बीबी बच्चे क्या करेंगे? अनाथ नहीं हो जायेंगे? कुछ अपने बाद की भी सोचो.''

वह असमंजस में पड़ जाता है, एक तरफ़ दादा और दूसरी तरफ़ अपनी भरी-पूरी गृहस्थी.

''मेरी मानों यह विचार छोड़ दो. मैं आपको यह हरगिज़ नहीं करने दूंगी.'' मलय अतीत में धंसता चला जा रहा है. अतीत की खट्टी-मीठी यादें उसे भीतर ही भीतर मथती चली जा रही थीं. उसे लगता है कि वह काजल को धिक्कारे और दादा पर अर्पित हो जाये परंतु वह ऐसा नहीं कर सका. उसकी आंखों के सामने एक-एक करके नीरव, निशा और काजल तैरने लगे थे. रोते-बिलखते चिल्लाते.

दादा को तीन-तीन डॉक्टर देख रहे हैं. किडनी के मामले में डॉक्टर चौधरी देख रहे हैं. हृदय रोग विशेषज्ञ है डॉक्टर गुलाटी और पूरे मामले की देखभाल कर रहे हैं डॉक्टर मिश्रा. डॉ. मिश्रा की सलाह पर दादा को आई. सी. यू. में शिफ़्ट किया जा रहा है. उसका ख़र्चा काफ़ी आता है और मलय पैसों से खाली होता जा रहा है. पहले कानपुर में दादा के लीवर का ऑपरेशन कराने में काफ़ी ख़र्चा आ गया था और इधर जब से डायलेसिस करवाने, हफ़्ते महीने आना पड़ता था उसका ख़र्चा भी तल्ला निकाल रहा था.

मलय ने तीनों दीदियों को ख़बर कर दी थी, शायद कोई हेल्प दादा के इलाज़ में मिल जाये. परंतु किसी का भी उत्तर प्राप्त नहीं हुआ था. वह सब दादा को देखने आयेंगी भी या नहीं, यह भी संशय था. दिन भर मलय के परिचित और परिजन भी आते–जाते रहे. पारदर्शी कांच के इस तरफ़ से ही सबने दादा को देखा, कि उनके सारे शरीर में मशीन के तार लगे हुए हैं. उससे और काजल से चर्चा करते हुए लौट भी गये. प्रतिदिन ख़र्चे का बोझ असहनीय होता जा रहा था.

दादा को वेंटिलेटर पर रख दिया गया था. उनके आस-पास जाना मना हो गया था. केवल नर्स और डॉक्टर आते–जाते थे. कभी नर्स आकर ऑक्सीजन की नॉब को घुमाती है कभी हार्ट मशीन को एडजस्ट किया जाता. तरह-तरह के मॉनीटर लगे थे और तारों का जाल बिछा हुआ था. दादा का विशाल शरीर बिल्कुल कृशकाय हो गया था. वे मरणासन्न थे. वे शांति की गहरी नींद में थे. शायद उन्हें अपना अंत समझ में आ गया था. चेहरे पर कुछ ऐसे ही भाव प्रतिबिंबित हो रहे थे.

दीदियां अगले दिन आ गयी थीं. अनीता अपने पति के साथ, सुनीता कुछ देर बाद अपने देवर के साथ और बाद में रीता अकेले ही आयी थी. डॉक्टर मिश्रा से मलय और दीदियों की बात हो गयी थी. डॉक्टर ने कोई उम्मीद बताने से इंकार कर दिया था, कब तक वेन्टिलेटर के जरिये उनमें सांस डाली जाती रहेगी. उसका ख़र्चा वहन करने की सामर्थ्य, यह प्रश्नचिन्ह उसके चेहरे पर अपने खौफ़नाक अंदाज़ में खड़ा था. काजल डॉक्टर मिश्रा से अलग से मिली और गंभीर उदासी और निराशा से उसने कुछ कहा जिसे डॉक्टर ने सिर हिला कर सहमति दी. वह तनाव में थी और एकदम मलय से मिलने पर कांप गयी.

एक हफ़्ता हो गया था और बोलते-चालते लाये, दादा स्पंदनहीन पड़े थे. सबके चेहरे पर तनाव था. कब? अब तो दिन गिनना शेष रह गया था. मलय रात को अस्पताल में ही रुक गया था. रोज़ ही रुकता था. काजल और बहनें घर पर आ गये थे. सुबह तड़के उठकर वह धड़कते दिल से वार्ड में दाख़िल हुआ. उसने देखा अंतिम सांसें चल रही थीं. उसका गला भर आया और वह रोने लगा. वातावरण में अजीब सी गंभीरता और सन्नाटा छाया हुआ था. थोड़ी देर बाद डॉक्टर मिश्रा आये और नब्ज़ देखी. जांच पड़ताल ख़त्म हो गयी. दादा को वेन्टीलेटर से निकाल लिया गया और सब कुछ समाप्त हो गया. डॉक्टर ने मृत्यु की घोषणा की और सन्नाटा टूट गया. वातावरण भारी हो गया था और मलय अपने अपराध बोध से ग्रसित, दर्द की भारी व्यथा उस पर छायी थी. उधर काजल भी अनमनी और गंभीर थी, अपने को समझाते हुए, वह रो पड़ी थी. दादा को मुक्ति मिल गयी यह सोच कर दादा की तीनों बहनों में संतोष व्याप्त था. बहनोई निरक्षेप भाव से अलग टहल रहे थे. सभी को ख़बर कर दी गयी. मलय को जानने वाले और कुछ दादा को जानने वाले आ गये थे. मलय की व्यस्तता बढ़ गयी थी, परंतु मलय के चेहरे पर एक लंबे तनाव के बाद, उसमें थकी हुई शांति दिखाई दे रही थी.

एम-१२८५, से.-आई. एल. डी. ए. कॉलोनी, कानपुर रोड, लखनऊ-२२६०१२
मो. : ९४१५२००७२४
E-mail : raja.singh1312@gmail.com

कहानी

इकत्तीस का महीना

✍ डॉ. लता अग्रवाल

कांता ने अपने कई सुख-दुख मुझसे साझा किये हैं. मैंने भी जहां तक हो सका अपना सखी धर्म ईमानदारी से निभाया है. किंतु आज जाने क्यों महसूस हुआ कि कुछ तो है जिसे कांता छिपाने का प्रयास कर रही है. एक झिझक... कुछ संकोच-सा मुझे उसके चेहरे पर दिखायी दिया. वह बार-बार ऊपर सीढ़ियों की ओर टकटकी लगा रही थी. तभी पोती रिंकू भोजन की थाली लेकर नीचे आती दिखायी दी.

''दादी! दादी! मम्मी ने आपके लिए खाना भेजा है. खा लीजिए.''

रिंकू कांता के छोटे बेटे की इकलौती बेटी है. जो ऊपर वाली मंज़िल में रहता है. कांता मेरी सखी, रामेश्वरजी की पत्नी जो कभी किराने की दुकान किया करते थे. सुख और शांति से बीतते दिन शायद विधाता को रास न आये. अच्छी भली गृहस्थी में तूफ़ान आ गया. रामेश्वरजी ने बीच गृहस्थी छोड़ बैकुंठ का रास्ता अपना लिया. हम कितना ही कह लें कि समय बदला है मगर इतना भी नहीं बदला. आज भी पति के न रहने पर स्त्री की दशा किसी से छिपी नहीं है, ...घर-घर मिट्टी के सकोरे हैं. मैं कांता के चेहरे पर उभरी चिंता की लकीरें भली-भांति देख पा रही थी मगर क्यों यह नहीं समझ पा रही थी. वह बात को नज़रअंदाज़ करते हुए बोली — ''रमा! पिछले कुछ दिनों से घुटनों का दर्द काफ़ी बढ़ गया है सो ऊपर जाने-आने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही सोचा खाने की थाली यहीं मंगा लूं. वैसे भी बुढ़ापे में ऊपर-नीचे करने की उम्र तो रही नहीं, अब तो एक जगह बैठकर बस भगवान का नाम ले लूं और क्या चाहिए.'' कहने को तो कह गयी कांता मगर जाने क्यों मुझे ऐसा लग रहा था कि मानो वह गीले आटे पर पलेथन लगा रही है.

''पंद्रह दिन राजू के यहां से थाली आ जाती है, पंद्रह दिन मन्नू के यहां से बस आराम से समय गुज़र जाता है.''

''और जो कहीं ३१ का महीना हो तो...?''

मैंने तो हंसी-हंसी में यूं ही कह दी थी यह बात मगर तभी रिंकू बोल पड़ी.

''...तो दादी उपवास रख लेती हैं.''

मैं रिंकू का मुंह ताकती रह गयी और कांता... वह तो मानो कोई जुर्म करते पकड़ी गयी हो, चेहरा सूख गया... लगा किसी ने उसे निर्वस्त्र कर दिया... जैसे बरसों से संजोई पूंजी किसी ने लूट कर उसे कंगाल कर दिया हो. सच भी है एक स्त्री का स्वाभिमान ही उसका सबसे बड़ा आवरण होता है और बच्चों ने बड़ी मासूमियत से उस आवरण को हटा दिया. आज तक कांता ने कभी घर और परिवार के बारे में कोई ऐसी बात किसी के सामने नहीं की जिससे भेद खुले कि उसके नसीब में भी मिट्टी के ही सकोरे आये हैं.

कांता के परिवार से हमारा नाता उस समय से है जब वह ब्याहकर आयी थी. उसके और मेरे ब्याह में चार माह का ही तो अंतर था. दोनों के पति अच्छे मित्र थे तो हम दोनों भी हम उम्र होने से अच्छी सहेलियां बन गयीं. किंतु विवाह के पांच बरस बाद ही कांता के जीवन में वह तूफ़ान आ गया जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी. तभी से उसने अपने सारे अरमान, शौक़ तख़्ता बेलन के नीचे दबा दिये. एक बाप का फर्ज निभाने स्वयं किराने की दुकान पर बैठने लगी. अपने ग़मों को छिपा बच्चों के लिए ख़ुशियां तलाशती रही. धीरे-धीरे वह वक़्त पर अपनी पकड़ बनाने की कोशिश करती और काफ़ी हद तक सफल भी रही.

निःसंदेह यह तपस्या का वक़्त था. बिना पति के दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती महंगाई में दो बच्चों की ज़िम्मेदारियों को निभाती. सोचती उसके राजू-मन्नू का उचित पालन-पोषण ही उसकी तपस्या है.

यूं भी पिता की छत्र-छाया से महरूम बेटे समय से पहले ही बड़े हो जाते हैं. कांता के बेटे भी जल्द ही समझदार हो मां की ज़िम्मेदारियों को साझा करने लगे. अब कांता केवल शाम को किराने की दुकान पर बैठती अन्यथा सारा दिन घर की सार सम्हाल में लगी रहती. बेटों के बड़े होने से कांता के सपनों के दायरे भी बड़े होने लगे. उसे लगा उसका परिवार भी अब बड़ा होना चाहिए. उसका घर भी पोते-पोतियों से आबाद होना चाहिए. आख़िर अपनी आंखों के लुटे सपनों को उसने अपने बेटों की आंखों में ही तो संजोया था.

वक़्त सम्हलते ही रिश्ते ख़ुद–ब-ख़ुद सम्हलने लगे. कांता के बेटे भी कामयाबी की सीढ़ी चढ़ने लगे थे. जवान भी हो गये और कमाऊ भी. जिनकी नज़रों में कभी उपेक्षा की पात्र रही कांता और उसके बेटे आज उन्हीं की निग़ाहें उन पर जमने लगीं. इन सबसे बेख़बर कांता की निग़ाह एक ऐसी लड़की तलाश रही थी जो उसके घर की मान मर्यादा को सलामत रखते हुए कुल की ज्योत को जलाये रख सके. बच्चे अभी तक मां के दामन से बंधे थे सो रोज़ की आमदनी कांता के हाथों में आती. वह दमड़ी-दमड़ी जोड़कर आने वाली बहुओं के लिए गहने बनवाती. अपने रंगों का संसार तो उसने उसी दिन त्याग दिया जब रामेश्वरजी ने उससे नाता तोड़ा था. अब तो उसकी बस यही मंशा थी कि उसके हिस्से के सारे रंग उसके दोनों बेटों के संसार में सिमट आयें.

बड़े चाव से कांता ने एक-एककर दोनों बेटों का ब्याह कर दिया. दो बहुओं के आते ही घर की परिभाषा बदलने लगी. कभी श्री और समृद्धि का प्रतीक कांता का घर अब कभी मौन द्वंद्व का अखाड़ा बन जाता तो कभी आस-पड़ोस के तमाशे का कारण. खाना बनाने को लेकर, तो कभी छोटी-छोटी बातों को लेकर सदा किच-पिच मची ही रहती. अब कांता करे तो क्या करे. किसके लिए कहे, जिसकी ग़लती बताये उसी से बुरी. छोटे-मोटे झगड़े तो राजू मन्नू के बीच होते ही रहे हैं और वह उन दोनों को डांट भी देती थी अधिकार से... आख़िर उसके अपने बेटे थे ... प्यार के साथ मार फटकार पर भी उसका अधिकार था. ये तो पराये घर की अमानत हैं जिन्हें कांता ने भले ही दिल से स्वीकारा मगर संजना और वर्षा की आंखों में उसे कभी अपने लिए वह अपनापन दिखायी नहीं दिया सो वह भी उन्हें अधिकार से कुछ कहने से डरती थी.

बड़ी मुश्किल से परिवार की गाड़ी पटरी पर आयी थी, एक बार फिर पथरीली राहों में हिचकोले लेने लगी. रामेश्वरजी के जाने के बाद भी इतनी अशांति नहीं आयी थी घर में जितनी अब आयी... क्योंकि उस वक़्त सदबुद्धि ने साथ नहीं छोड़ा था. बेटे मां की हर आज्ञा का पालन करते थे. अब वही बच्चे पति हो गये हैं इसलिए कांता बेटों से भी कुछ कहते भय खाती थी. शायद अब उसे बच्चों की आंखों में अपने लिए वह श्रद्धाभाव नज़र नहीं आता था. वह अपनी ओर से बराबर रिश्तों को नमी देती रही मगर बेटों और बहुओं के व्यवहार से घर की ज़मीं पर आये रूखेपन को रोक न सकी. देखते ही देखते घर द्वंद्व स्थल बन गया. कई विद्रोह के कैक्टस वहां उग आये. अब तन की ही नहीं मन की भी दूरी बढ़ती जा रही थी. रहा सहा दोनों बेटों की ससुराल वालों का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा था. उस कुरूक्षेत्र में अब कांता का मन लगता भी नहीं था मगर करती भी क्या...? जाती भी तो कहां जाती...? कोई और जहां उसने बसाया भी नहीं. उसका मंदिर...तीर्थ...समाज...सभी कुछ

परिचय

जन्म : २६ नवंबर;

एम. ए. (अर्थशास्त्र, हिंदी), एम. एड., पीएच. डी.

: प्रकाशन :

कई शोधपत्रों के साथ राष्ट्रीय समाचार पत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशन. आकाशवाणी व दूरदर्शन व साहित्यिक मंचों में कविता तथा कहानी पाठ. 'मैं बरगद' (कविता संग्रह : बरगद पर १३१ कविताएं) पुरस्कृत, 'आंचल' (मां पर १११ कविताएं); 'मुस्कान', 'असर आपका', 'मुझे क्यूं मारा', 'मेरा क्या कसूर', 'पुस्तक मित्र महान' (बाल-संग्रह). बाल पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता एवं शैक्षिक प्रसंग; 'सिंदूर का सुख', 'सांझी बेटियां' (कहानी संकलन); 'पयोधि हो जाने का अर्थ', 'उत्तर सोमारू' (समीक्षा). अनेक सम्मानों से अलंकृत.

: संप्रति :

प्राचार्य महाविद्यालय (मित्तल इंस्टीट्यूट ऑफ एज्यूकेशन, भोपाल)

: रूचि :

लेखन.

ई-मेल : agarwallata8@gmail.com

तो इन्हीं दो बेटों के आस-पास ही था.

सोचती जाने किस की नज़र लग गयी उसके परिवार को... मनोयोग से लगायी उसकी फूलों भरी बगिया में जाने कहां से खरपतवार उग आयी. कांता ने अपनी ओर से पूरा प्रयास किया इन दूरियों को मिटाने का मगर पास आने की संभावनाएं सभी समाप्त हो चुकी थीं. संभावनाएं भी तभी पनपती हैं जब उनके लिए दिल से प्रयास भी हो. कांता ने हार कर मान लिया कि अब उसके घर रिश्तों की दीवारों में दीमक लग गयी है. वह भीतर ही भीतर खोखली हो चुकी है. कोई वस्तु होती तो वह धूप में सुखाकर दीमक को नष्ट करने हेतु कुछ जतन भी करती मगर यह तो मन की खाई है इसे पाटना अब उसके बस में नहीं. मन पर बोझ रख उसने दोनों का चौका चूल्हा अलग कर दिया. संजना और वर्षा को मानो मांगी मुराद मिल गयी. मगर कांता समझ नहीं पा रही थी कि अब वह क्या करे. तभी दोनों बेटों ने कहा — ''तू क्यों चिंता करती है मां! तू तो बस आराम से बैठ कर भगवान का नाम ले, दोनों बहुएं हैं ना... तेरे खाने-पीने का ध्यान रखने के लिए.''

क्या कहती कांता खाने की भूख रही ही कहां, अब तो बस इस तन को जीवित रखने के लिए खाना है. तभी झट वर्षा बोल पड़ी —

''हां मांजी! सच ही तो कह रहे हैं ये... आप क्यों परेशान होती हैं बस पंद्रह दिन बड़े भैया के यहां खाना और पंद्रह दिन हमारे यहां, अब आपको ऊपर आने की तकलीफ़ भी नहीं करनी होगी... मैं यहीं आपकी थाली भिजवा दिया करूंगी.''

... सुनते ही कांता को अपनी ज़मीनी हक़ीकत का एहसास हो गया. सामने खड़े बेटे मां को बंटते देख रहे थे और मौन थे. इससे बड़ा दुर्भाग्य एक मां का और क्या होगा...? जिन बच्चों को अपने हिस्से के निवाले खिलाकर पाला आज वही बच्चे मां के निवालों के हिस्से कर रहे हैं.

परंपराएं समय के साथ बनती और पलती चली जाती हैं. इस घर में भी अब नयी पीढ़ी ने नयी परंपराएं चलन में ला दीं. पंद्रह दिन कांता राजू के यहां से थाली आने का इंतज़ार करती. पंद्रह दिन मन्नू का... पति ने मझधार में छोड़ दिया, बेटों ने बहुओं के भरोसे छोड़ दिया, किंतु कांता ने अपना स्वाभिमान नहीं छोड़ा था सो फिर कभी बहुओं की रसोई में झांकने नहीं गयी. फिर आया इकत्तीस का महीना... आज सुबह से दोपहर हो आयी अभी तक न तो संजना ने थाल भिजवाया न ही वर्षा ने... पता नहीं शायद भूल गयी हो या किसी काम में लग गयी हो. कांता ने पोते-पोतियों को आवाज़ लगायी.

''रिंकू... रजत...,''

''क्या हुआ दादी..?''

विजय का बेटा रजत और संजय की बेटी रिंकू झट से आ पहुंचे, अब क्या कहे कांता समझ नहीं पा रही थी सो पूछ लिया —

''बच्चों ! खाना खा लिया...?''

''हां! दादी कभी का ... और आपने...? रिंकू बोली, आज तो ताईजी ने खीर बनायी है रजत बता रहा था. बड़ी अच्छी खीर होगी न दादी...?''

तभी रजत बोला, ''अरे! नहीं आज तो वर्षा चाची की बारी थी दादी को खाना देने की....?''

कांता दोनों बच्चों के मुंह ताकती रह गयी. स्वयं को बेआबरू महसूस कर रही थी...बच्चों से निग़ाहें मिलाते उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी. मानो गुनाह उसी ने किया है. वह झट से बोली —

''नहीं बच्चों ! मैंने ऐसे ही पूछ लिया, आज मुझे खाना नहीं खाना है.''

''क्यों दादी...?''

''आज मेरा उपवास है.''

अबोध बच्चे शब्दों की गहराई भला क्या जानते. सो हंसते-खेलते आगे बढ़ गये.

कांता को लगा एक बार फिर वह बेवा हो गयी. बल्कि उस वक़्त इतनी जिल्लत का सामना तो नहीं किया था. जितना आज... दो-दो बेटों की मां होकर भी आज उसकी दो वक़्त की रोटी का हिसाब किया जा रहा है. बहुओं को क्या दोष दूं वे तो पराई हैं... बेटे तो अपने हैं जो कभी मां के बग़ैर खाना नहीं खाते थे. क्या आज उन्हें इतनी भी चिंता नहीं कि जान सकें मां ने खाना खाया या नहीं...?

धीरे-धीरे कांता को हर ३१ तारीख़ को उपवास रखने की आदत सी हो गयी थी.

□

आज उसी कांता का बारहवां है. घर में व्यंजनों की महक आ रही थी. दोनों भाई दौड़-दौड़कर पंडितों की फ़रमाइश पूरी कर रहे हैं. जग के बनाये संस्कार निभा रहे हैं.

उस पर महान आश्चर्य कि दोनों बहुएं आज हर बात पर एक मत हो सारे लड़ाई–झगड़े बिसराकर काम में लगी हैं. कांता के नाम से ब्राह्मणी जिमायी जा रही हैं. उनकी इसी एकता को देखने के लिए कांता की आंखें तरस गयीं. सच! यह मुर्दों का देश है जहां जीते इंसान को मरने के लिए विवश किया जाता है और मरने के बाद उसके नाम से सारे ढोंग, दिखावे किये जाते हैं. 'जीते को डरे, मरे को बरे.' यह कहावत शायद किसी ने जीवन के गहरे अनुभवों से कही है.

पंडितों के आदेश पर दोनों बहुओं ने गौ-ग्रास और कौवे के ग्रास पत्तल पर लगाये. मैं चूंकि कांता की सबसे क़रीबी सखी मानी जाती थी सो बहुएं और बेटे जो कभी संभव है मुझे आंखों की किरकिरी मानते रहे हों, आज मासीजी! कुछ कमी रह गयी हो तो बताइए...हमने अपनी ओर से पूरी कोशिश की है कि मम्मीजी को जो चीज़ें अच्छी लगती हैं वह सब बनवायी हैं. वहीं राजू-मन्नू भी मासीजी! कोई कमी हो तो बता देना...

मैं क्या कहती...? बेटा! जो कमी रही है उसे तुम अब कभी पूरा नहीं कर सकते. जिस औरत ने तुम्हें अपने आंचल की छांह दी, अपने हिस्से की नींद दी, अपनी ख़ुशियां निछावर कर अपने सारे निवाले तुम्हारे नाम कर दिये. उन सबसे बड़ी बात, इस दुनिया में तुम बिन बाप के होकर भी अपने क़दमों पर चल सके. ...उस औरत की बदौलत जिसको तुमने जीते जी दो वक़्त की रोटी में बांट दिया. मगर चाहकर भी कुछ नहीं कह पायी. बस इतना ही कहा — ''राजू-मन्नू बेटा, दोनों भाई मिलकर ये पत्तल ऊपर ले जाओ और कौओं को बुलाकर खिला आओ. कौओं का पत्तल झुठाना बहुत ज़रूरी है और संजना और वर्षा तुम ये गौ-ग्रास बाहर जाकर गाय को खिला आओ.'' पंडितजी ने मेरा समर्थन किया. ''बिलकुल सही कह रही हैं बहनजी, मान्यता है कि इससे मृत व्यक्ति को तृप्ति मिल जाती है. वह परलोक में भोजन पाता है.''

संजना और वर्षा पूरी गली में घूम आयीं..

''मासीजी ! गली में दूर-दूर तक कहीं गाय नज़र नहीं आ रही.'' वहीं दोनों बेटे भी ऊपर से उतर आये, बोले बहुत आवाज़ लगायी... कांव...कांव...मगर एक भी कौआ नज़र नहीं आया.

पंडितजी कह रहे थे — ''अरे! यह तो अच्छा शगुन नहीं कि न तो गाय ने ग्रास ग्रहण किया न ही कौए ने. इसका मतलब है मृत व्यक्ति ने भोजन नहीं स्वीकारा.''

तभी रिंकू और रजत जो काफ़ी देर से सभी की बातें सुन रहे थे बोले — ''अरे! नहीं पंडितजी...आज ३१ का महीना है ना! ...आज न दादी का उपवास रहता है इसलिए...''

७३ यशविला,
भवानीधाम फेस, नरेला शंकरी,
भोपाल- ४६२०४१

ग़ज़ल

साधना होती नहीं

✍ चंद्रसेन विराट

ध्यान लग पाता नहीं, आराधना होती नहीं ।
देख साधक! इस तरह तो साधना होती नहीं ।।

इष्ट में विश्वास, निष्ठा और श्रद्धा हो मगर ।
अहम् को त्यागे बिना तो प्रार्थना होती नहीं ।।

भाव के अनुरूप ही मिलता सभी को कर्मफल ।
सत नहीं सधता जहां सद्भावना होती नहीं ।।

प्रेम की आसक्ति भी यदि ऊर्ध्व है तो भक्ति है ।
काम्य मिल पाता कहां यदि कामना होती नहीं ।।

अश्रुओं के आगमन पर स्मित करे स्वागत न तो ।
आगतों की वास्तविक अभ्यर्थना होती नहीं ।।

राह देखो, पाप की अति हो न जाये तब तलक ।
भूमि पर देवत्व की अवतारणा होती नहीं ।।

ईश भी छिद्रांवेषण से बचे हैं कब कहो ।
कौन है? किसकी यहां आलोचना होती नहीं ।

तीव्र इच्छा शक्ति, तप, संकल्प, श्रम, संघर्ष बिन ।
उच्चतर उपलब्धि की संभावना होती नहीं।।

शर्त है कविता लगे, मन को छुये, रस-रम्य हो ।
भाव, छंदों, ध्वनि बिना गीतार्चना होती नहीं ।।

आत्म-अभिभाषण की अनुशंसा अस्वीकृत है मुझे ।
संग्रहों में इसलिए प्रस्तावना होती नहीं ।।

१२१, बैकुंठधाम कॉलोनी,
आनंद बाजार के पीछे, इंदौर- ४५२०१८.
मो. : ९३२१८९५५४०

कहानी

बिछावन

✍ नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

हड्डियां जमानेवाली पूस की ठंड! लगातार हफ़्ते भर से बह रही शीत लहर और बरस रही बारिश में क्या बच्चे, बूढ़े और जवान सब शाल-स्वेटर और रजाई में दुबके.

बाहर ठंडी हवाओं के साथ बरसती झमाझम बारिश और बंद घर में रूम हीटर व जलती आग के बावजूद कंपकपी छूटती. ऐसे मौसम में बर्तन और कपड़े धोने में लगते हाथ सुन्न हो गये. पानी ऐसा जैसे लगे बर्फ़ हो. इस ठंड के मौसम में बस रजाई में दुबके गर्म-गर्म चाय व पकौड़े मिल जायें तो मजा आ जायें. पर उसका ऐसा भाग्य कहां?

महरी लगाने के बाद भी मुआ घर के सारे काम ख़ुद ही करने पड़ते हैं, फिर क्या ज़रूरत है महरी रखने की. जब ऐसी भीषण ठंड में ख़ुद ही मरना खपना है. आती है बिमली तो आज उसका हिसाब पूरा कर देती हूं. चार दिनों से लापता है. पता नहीं कहीं वह भी ठंड के मजे ले रही होगी. बोरसी की आग में आलू पका नमक के साथ ख़ूब चटखारे ले ले कर खाती होगी.

गर्म-गर्म राख में पके हुए काले-काले आलुओं को झाड़-पोंछ कर बिना छिलका उतारे सोंधी-सोंधी महक और भाप निकलते हुए नमक के साथ खाना कितना स्वादिष्ट लगता है. उस पर हरी मिर्च वाह! सोने पर सुहागा! दो-तीन कप चाय-काफी पीने से जितनी गर्मी शरीर को नहीं आती उतनी गर्मी आग में पके सिर्फ़ एक आलू खाने से आ जाती.

१५-२० दिन पहले गौतमी के फ़्लैट की बालकनी में बिमली ने अपने घर से लायी मिट्टी की बनी बोरसी में बोरी और लकड़ी जलाकर ख़ूब सारे आलू पका कर उसे गर्म-गर्म खिलाये थे. कुछ आलुओं को मसल कर उसमें प्याज, हरी मिर्च, नमक और कड़वा तेल डाल उस का चोखा भी खिलाया था. उसे बरबस याद आ गये.

आने दो महारानी को आज उसे ऐसी खरी-खोटी सुनाऊंगी कि बस...गौतमी घर के काम निबटाते हुए मन ही मन भुन–भुना रही थीं.

बिमली न जाने क्यों चार-पांच दिनों से काम पर नहीं आ रही है. शायद उसकी या परिवार में किसी की तबीयत ख़राब है या वह कहीं चली गयी है. अगर कहीं वह जाती तो गौतमी को बताकर जाती. वैसे उसका रिश्तेदार है ही कौन? सिर्फ़ एक देवर जो उसी की चाल में पड़ोस में रहता है.

ठंड में गौतमी की तबीयत ज़्यादा ख़राब हो जाती है. सर्दी खांसी बनी ही रहती है. ज़्यादा पानी छू दिया तो बुखार भी डंडे लेकर पीछे पड़ जाता है. इसी कारण कमल ने पूरी सर्दी भर के लिए अपने ऑफ़िस में झाड़ू-पोंछा करनेवाली एक औरत से नौकरानी के लिए कहा था. महानगर में अच्छी काम वाली मिलना मुश्किल था फिर भी वह दूसरे दिन ही बिमली को लेकर आयी.

उसके बात-व्यवहार और सफ़ाई से काम करते देख पति-पत्नी को इतना अच्छा लगा कि उसे हमेशा के लिए बच्चा होने के बाद भी रखने के लिए सोच लिया था, पर वह तो लगभग चार महीने पूरे करने के बाद से ग़ायब ही हो गयी. उसके प्रति गौतमी कभी उदार हो पूछ बैठती, ''बिमली, मुझे तो बहुत ठंड लगती है, क्या तुम्हें नहीं लगती? पांच-छह घरों में वहीं काम झाड़ू, पोंछा और बर्तन-कपड़े धोना. मैं तो जूठे बर्तन और भीगे कपड़े छूती हूं तो लगता है सब

करंट मारते हैं.''

''दीदी, हम ग़रीबन के कैसी ठंडी-गरमी? भगवान जी हम लोगन के देह लोहा के बनाये हैं. हम सब जाड़ा, गरमी आ बरसात सह जात हैं. आप अमीर लोग बड़ा सुकुवार होते हो. थोड़ी सी हवा-बयार लग जाये तो नाक से पानी ही गिरने लगे और घामा लग जाये तो कपार में दरद होने लगे.''

रह-रह कर गौतमी को बिमली की बातें याद आ रही थीं. उसने सोचा दोपहर में सब्ज़ी लेने जाऊंगी तो मिसेज़ सिन्हा से उसके बारे में पूछ लूंगी. वह उनके घर आ रही है या नहीं.

कार्डिगन स्वेटर को बाहों पर चढ़ाये ठंड से दांत कटकटाते वह जैसे-तैसे आधा-अधूरा काम कर शाल ओढ़े नज़दीक के बाज़ार में चली गयी.

बारिश रुकी हुई थी पर ठंडी हवा ज़ोरों से चल रही थी. ऐसा लग रहा था कहीं बर्फ़ गिरी है. उसने सिर पर बंधे स्कार्फ़ को और टाइट किया. और अच्छी तरह से शाल से अपने आपको ढका. अनायास ही उसके हाथ अपने निकले हुए पेट पर चले गये.

उसे अहसास हुआ कि उसका अजन्मा बच्चा बायें से दायें की तरफ़ फुर्र से भागा, 'मेरे लाडले डरो मत. तुम्हें ठंड छू भी नहीं पायेगी.' वह मन ही मन मुस्करा पड़ी.

भाजी की दुकान पर दोपहर में अच्छी-ख़ासी भीड़ थी. ट्रक से सब्ज़ी जैसे ही उतरती है ग्राहक और छोटे दुकानदार ताज़ी-ताज़ी सब्ज़ियां अपने लिए छांटने लगते हैं. बाद में छंटी हुई सब्ज़ियों को कोई पूछता नहीं. आस-पास के फ़्लैटों की सारी औरतें वहां पहुंची हुई थीं, ठंड को ठेंगा दिखाते. साग, सेम, फूलगोभी, बंद गोभी, मटर, गाजर और टमाटर आदि से गौतमी का थैला भर गया. वह थैला लिये थोडी भीड़ के बीच सारी औरतों में से मिसेज सिन्हा को ढूंढ़ने लगी. मगर वे नदारद थीं.

अब बिमली के बारे में किससे पूछ-ताछ करूं? क्या भोंपू लगा कर इस भाजी मार्केट में चिल्ला-चिल्लाकर पूछूं कि, 'ए लोगों. तुम सबने मेरी नौकरानी बिमली को कहीं देखा है? वह नाटे कद-काठी की सांवले रंग की है. वह अपने ललाट पर बड़ी सी कत्थई रंग की अंडाकार बिंदी लगाती हैं. बिंदी के ठीक नीचे पीला सिंदूर का छोटा टीका भी लगा रहता है. और दूर से ही उसकी पूरी मांग में पीला सिंदूर चमकता है. उसे कहीं देखा तो प्लीज मेरा संदेशा दे देना कि अगर वह भूल गयी है तो याद आ जाये उसकी गौतमी दीदी का सातवां महीना चल रहा है. कड़कड़ाती ठंड में भारी शरीर से जल्दी काम नहीं हो पा रहा है. इन चार-पांच दिनों में उसकी हालत एकदम बिगड़ गयी है. वह जहां कहीं भी हो जल्दी से जल्दी अपनी नौकरी पर हाजिर हो.' गौतमी को मन ही मन की गयी इस कल्पना पर बड़ा तरस आया और बाथरूम में पड़े बाल्टी भर भिगाये कपड़ों को याद कर उसके रोंगटे खड़े हो गये.

परिचय

२० नवंबर १९८०, बहिया, भोजपुर (बिहार).

: शिक्षा :

मैट्रिक

: प्रकाशन :

'हमसफ़र' (कहानी संग्रह), 'संवरी' (भोजपुरी उपन्यास धारावाहिक रूप में) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर रचनाएं प्रकाशित.

: संप्रति :

स्वतंत्र लेखन.

वह बुझे मन से जाने लगी तभी किसी ने उसे आवाज़ दी, ''गौतमी...गौतमी...''

''अरे, मिसेज़ सिन्हा जी...'' उसने पलट कर देखा और उसके अधरों पर एक इंच मुस्कान फैल गयी, 'अब तो बिमली के बारे में पता चल ही जायेगा.'

वह उनके पास जाकर कुछ पूछती कि वे ख़ुद बोल पड़ीं, ''गौतमी, तुम्हें पता है, बिमली जेल में है?''

''जेल में...बिमली...'' गौतमी का मुंह खुला का खुला रह गया.

''हां, उसने अपने पति का ख़ून कर दिया...''

''ख़ून... पति का...'' उसे दुबारा झटका लगा.

''पता नहीं वह कैसे चाल-चलन की थी, जिसने अपने पति को ही मार डाला. छूट भी जायेगी तो मैं उसे नहीं रखूंगी. मैं दूसरी नौकरानी का पता लगा रही हूं. तुम्हें भी रखना होगा तो कहना. अच्छा, मैं भी सब्ज़ी ले लूं.' कहकर वह चली गयी.

गौतमी के सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो गयी. उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि बिमली ऐसा भी कर सकती है. उसके दिल-दिमाग़ में बिमली के नाम का अंधड़ चलने लगा.

वह ख़ुद कहती, ''दीदी, हमार सारा दारोमदार त पतिए पर है न. उसका बिना हमार का ज़िंदगी? दारू पीकर मारता-पीटता है तो का करूं? आख़िर पेयार त हमसे ही न करता है.''

''ऐसे बेवड़ा और पत्नी को पीटने वाले पति को मैं जेल में डाल कर सड़ा देती.'' गौतमी बिमली के हाथ पर पट्टी बांधते हुए बोली थी.

उसके पति ने उसे इतना मारा था कि हाथ और पीठ पर ज़ख़्म हो गये थे.

''का करूं दीदी, हमार छत तो हमार मरद ही है न. तुम्हारे समाज में औरत लोग जल्दी ही तलाक ले लेती हैं, पर हम ग़रीब औरत पति के लात-जूता खाके बस सहती हैं. इहे भाग्य में लिखा है. मरद से एक-दो दिन बोल-चाल बंद रहेगी फिर तो हम उससे बतिअइबे करेंगे. एक-दोसरा से सुख-दुख बंटबे करेंगे. आख़िर हमार बेटी के वर खोजे उहं नू जायेगा कि हम माथा पर पगरी बांध के आपन दमाद खोजे जायेंगे.''

''ठीक है. हंस-हंस कर मार खाओ पति से,'' गौतमी को ग़ुस्सा आ गया.

''का करूं दीदी, आपन-आपन नसीब है,'' कहकर वह झाड़ू करने लगी थी.

मिसेज़ सिन्हा की तरह अब तो पूरी दुनिया बिमली पर लांछन लगायेगी. न जाने किस-किस के साथ उसका नाम जोड़ ताल ठोंक-ठोंक कर उसका मजाक उड़ाया जाये...

''अरे मैडम, सड़क पर होश में चला करो. तुम्हारी गलती से एक्सीडेंट होगा और जेल मुझे जाना पड़ेगा.''

अपनी धुन में चलती जा रही गौतमी सामने से आ रही एक बाइक के एकदम सामने पड़ गयी. वह तो गनीमत थी कि बाइक वाले ने उसके चलने के अंदाज़ से ही ब्रेक मार दिया.

''ओह सॉरी भाई...'' गौतमी को जैसे होश आया. बिमली की याद में वह एकदम भूल ही गयी थी कि सड़क पर है या घर में.

वह जल्दी से घर आयी. थैला रख फ्रिज़ से पानी की बोतल निकाल मुंह से लगा ली.

''—दीदी, नहाती हो गरम पानी से मगर पीती हो ठंडा पानी, काहे...?''

गौतमी को लगा जैसे बिमली पीछे से आकर बोल गयी. उसने झट से पीछे मुड़ कर देखा कोई नहीं था. अपने भ्रम को परे झटक वह बोतल लिये सोफ़े पर बैठ गयी. मिसेज़ सिन्हा जी की बातों ने उसके दिल में हलचल मचा रखी थी. उसने बोतल फ़र्श पर रखी. अचानक महावर लगे अपने पैर पर उसकी नज़रें टिक गयीं. पैर को आलता से रंगना बिमली ने ही तो सिखाया था उसे. फिर उसकी यादें छू गयीं.

''दीदी, तुम भी शहरी मेम की तरह, ना मांग में सेनुर लगाती हो ना टिकुली साटती हो. हाथ में सीसा की चूड़ी नहीं, पैर रंगे नहीं. भला अइसे कोई पतनी रहती है. भर मांग सेनुर लगाया करो उससे मरद की उमिर बढ़ती है. कम से कम दोनों हाथों में छव-छव गो चूड़ी पहनो. गोड़ (पैर) को अलता से रंगो. नोह (नाखून) में नेलपॉलिश लगाती हो तो गोड़ काहे नहीं रंगती?''

बिमली को आये अभी ४-५ दिन ही हुए थे. गौतमी को बिना सिंदूर-बिंदी में देख सुहागन औरतें कैसे सज-संवर

लघुकथा

चोर-पुलिस

✍ योगेंद्र शर्मा

पहले अनघ और सौरभ में बहस हुई, कि चोर कौन बने. दरअसल दोनों में से कोई भी चोर बनना नहीं चाह रहा था. दोनों ने समस्या मम्मी को बतायी, सौरभ को पुलिस कमिश्नर का रोल मिल गया और अनघ को पुलिस इंस्पेक्टर. अब चोर कौन बने? मम्मी से कहा, तो उसने साफ़ मना कर दिया. बहरहाल, एक कपड़े के बड़े गुड्डे को चोर बनाकर, खेल शुरू हो गया.

दूर बैठे, उनके बाबू सोच रहे थे, अभी इन्होंने बॉलीवुड की फ़िल्में ज़्यादा नहीं देखी हैं, नहीं तो ये चोर बनने को झगड़ते.

✉ ३/२९ सी, लक्ष्मीबाई मार्ग, रामघाट रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.)

कर रहती हैं उसने ख़ूब ट्यूशन पढ़ायी थी.

गौतमी नामी-गिरामी मोबाइल कंपनी में जॉब करने वाली हाई-फ़ाई लड़की थी. कमल भी उसी में जॉब करता. गौतमी को सुहाग की निशानियां कोरे बकवास लगते. इसलिए उसने कोर्ट मैरिज़ की ताकि इन झंझटों से वह बची रहे. मगर गांव का पला-बढ़ा कमल चाहता था कि उसकी जीन्स वाली बीवी साड़ी में सजी-धजी रहे.

वह तो जीन्स भी नहीं छोड़ती. मगर डॉक्टर ने बच्चा हो जाने तक उसे सलवार-सूट पहनने के लिए कहा था ताकि पेट पर कोई दबाव न पड़े और गर्भ के बच्चे का विकास सही ढंग से हो.

दूसरे दिन ही बिमली बाजार से बिंदी, सिंदूर, चूड़ी और महावर ख़रीद लायी. गौतमी को साड़ी पहना कर उसका श्रृंगार कर दिया. वह चाहकर भी उसे रोक नहीं पा रही थी क्योंकि एक साल हो जाने के बाद भी कमल के घरवालों ने उसे अपनाया नहीं था. गौतमी के परिवार वाले भी इस शादी के खिलाफ़ थे. दूसरी औरतों को देख कभी-कभी उसे श्रृंगार करने की चाहत होती थी फिर उसके मन में आता छोड़ो भी वह दकियानूसी रिवाज.

पहली बार नारी के संपूर्ण श्रृंगार में गौतमी ने जब अपने आप को आइने में देखा तो ख़ुद ही लजा गयी. सिर्फ़ बिंदी और सिंदूर से उसका गेहुंए रंग का मुखड़ा ताज़े गुलाब की तरह खिला-खिला हो गया था. उसे आज पता चला था कि बिंदी और सिंदूर नारी का संपूर्ण गहना होता है.

''दीदी, हम जा रहे हैं अब भइया के आने का टेम हो गया है. ऐसे ही रहना. हमारा विश्वास है तुम्हें देखते आज भइया पगला जायेंगे.''

बिमली के जाने का समय एक घंटे बाद था मगर वह जल्दी चली गयी ताकि पति-पत्नी के बीच में वह रोड़ा न बने. उसकी समझदारी पर गौतमी के लिपस्टिक लगे होंठ मुस्करा पड़े. बिमली के कहे अनुसार उसने शर्माते-मुस्कराते दरवाज़ा खोला तो एक पल के लिए कमल ठिठक गया. कहीं ग़लती से उसने दूसरे के फ़्लैट की बेल तो नहीं बजा दी या उसके घर में इतनी सुंदर मन-मोहिनी यह औरत कौन आयी है?

''आओ अंदर...''

''गौतमी तुम...'' कमल को विश्वास नहीं हुआ, ''तुमने इतना ख़ूबसूरत दुल्हन का रूप कैसे बना लिया? आज सूर्य पश्चिम से कैसे निकला मेरी डार्लिंग...'' उसने दरवाज़ा बंद कर गौतमी को चूमते हुए एकदम गोद में उठा लिया, ''मेरी बीवी परी जैसी इतनी सुंदर है मुझे अभी पता चला. आख़िर वह जादूगर है कौन जिसने मेरी जीन्स पहनने वाली को साड़ी वाली बना दिया?''

''बिमली...''

''थैंक्यू बिमली थैंक्यू.'' ख़ुशी में लोट-पोट कमल चिल्ला पड़ा.

उस दिन के बाद गौतमी श्रृंगार करने लगी. कमल दिन-रात अपने नये-नये प्रॉज़ेक्ट में लगा रहता. उसे छुट्टी नहीं मिलती. बिमली नियम से गौतमी को डॉक्टर के पास ले जाती. गर्भावस्था में क्या खाया जाये, कैसे उठा-बैठा जाये हमेशा उसे समझाती. दोनों एक दूसरे से अपना सुख-दुख बतियातीं. दोनों में बहनापन का रिश्ता हो गया था.

हवन करेंगे...हवन करेंगे...मोबाइल में रिंग टोन से गौतमी के यादों के तार टूटे.

कमल का फ़ोन था. उसे भी बिमली के बारे में पता चल चुका था.

''कमल, मैं बिमली से मिलना चाहती हूं. मुझे यक़ीन नहीं हो रहा है कि उसने अपने पति का ख़ून कर दिया है.''

''विश्वास तो मुझे भी नहीं हो रहा है. गाड़ी भेजता हूं तुम थाने चली जाओ. मैं अपने दोस्त संतोष को फ़ोन कर देता हूं. वह तुम्हें उससे मिलवा देगा.''

''गाड़ी मत भेजो मैं टैक्सी से चली जाऊंगी.'' गौतमी ने फ़ोन काटा. पर्स में रुपए ठूंस दरवाज़ा बंद कर सड़क पर आ गयी वह.

उसके टैक्सी से उतरते पुलिस इंस्पेक्टर संतोष बाहर आ गया. दोनों ने एक दूसरे को अभिवादन किया.

''भाई साहब, बिमली के बचने का कोई चान्स?''

''बिल्कुल नहीं. भाभी जी, वह बहुत खूंखार ख़ूनी हैं. बहुत बेदर्दी से उसने अपने पति के सिर को पत्थर से कुचल कर मारा है.''

''यह क्या कर दिया बिमली तूने...'' गौतमी के मन में जोर से टीस उठी.

एक लेडी कांस्टेबल उसे कारावास में ले गयी. सलाखों के पीछे खड़ी अपराधी औरतें गौतमी को ऐसे घूर-घूर कर देख रही थीं जैसे वह भी कोई अपराध करके उनके बीच रहने आयी हो. उसका मन कैसा-कैसा होने लगा. ग़लत धंधों में

लिप्त औरतें उसे देख इशारे कर-कर के हंस भी रही थीं.

लेडी कांस्टेबल बंदी गृह की एक छोटी कोठरी के सामने खड़ी हो बोली — ''मैडम, यही है वह ख़ूनी.''

घुटने में सिर घुसाये कोई औरत बैठी थी.

कांस्टेबल ने सीखचे को खटखटाया. ''ऐ... देख, तुझसे यह मैडम मिलने आयी है.''

उसने सिर उठा कर देखा तो बस देखती रह गयी. ''दीदी...''

''बिमली...'' उसे एकदम सादे लिबास में देख गौतमी का दिल धक् से कर गया.

ना बिंदी, ना सिंदूर और ना ही दर्जन भर रंग बिरंगी चूड़ियां. उजली साड़ी में सामने खड़ी एक बेवा...होंठ मुंह-सूखे पर आंखों में कोई लज्जा या शरम नहीं.

कांस्टेबल चली गयी.

''दीदी, आप यहां काहे आयीं?'' पास आकर लोहे के मोटे-मोटे सीखचे को पकड़ वह खड़ी हो गयी.

''बिमली, यह सब कैसे हुआ?'' उसे इस जगह इस रूप में देख गौतमी के आंसू छलक पड़े. उसके हाथ बिमली के हाथों पर चले गये.

''दीदी, हमार नसीब...''

''किसी वकील से तुम्हारी बात हुई?''

''काहे के लिए, दीदी? यहीं रहने दो हमका. बाहर आने से फ़ायदा का? अब कोई तो नहीं है हमार...'

''पति की इतनी गाली-बात व पिटाई सहती रही उस समय तो उसे नहीं रोका फिर ऐसा क्या हो गया जो तू ने उसे जान से ही मार डाला?''

''वैसा मरद से तो विधवा रहना ठीक है. वैसा मरद हर जन्म में आपन मेहरारू के हाथों मारा जायी. उस मरद प हम थूकत हैं...आक थू...'' ग़ुस्से से तिलमिलाई बिमली ने मुंह का सारा थूक पच्च से कोठरी के कोने में थूक दिया.

मरे हुए पति के प्रति उसकी ऐसी नफ़रत देख गौतमी सिहर गयी.

''दीदी, उस टेम अगर मेरे हाथ में तलवार रहती तो उसकी हड्डी-हड्डी काट देती.''

''आख़िर बता भी हुआ क्या था जो तू...''

''सुन सकोगी दीदी, करेजे को फाड़ने वाली बात. जब ऊ साला बेवड़ा आपन बूंद से पैदा हुई बेटी के ऊपर चढ़ा था तो कौन मां ऐ...''

''क्या...?''

''हं, दीदी...जिस मरद के नाम से मैं अपनी मांग सजाती रही वही अपनी चौदह साल की बेटी की इज़्ज़त को दाग़दार करे तो भला हम का करते? चार दिन पहले हम आप सभी के यहां से चौका-बरतन कर खाना लिये अपने घर गये. देखा रूम की केवाड़ी (दरवाज़ा) बंद थी. पांच-छव दिनों से दारू में डूबा मरद घर में ही सोया रहता. आप लोगन के यहां से एतना खाना मिल जाता था कि हमको बनाना ही नहीं पड़ता. पांच-छव हज़ार तक पगार मिल जाती. ऐहिसे ऊ सोचता कि एगो कमा ही रही है फिर हमरे कमाने से का फ़ायदा.

हमार बेटी टुनिया (टुन्नी) रोज़े इस्कुल जाती. पढ़ने में ऊ बड़ी तेज़ थी. इस्कुल के मेडम हमसे बोली रही कि टुनिया के आठवां कक्षा में ख़ूब बढ़िया नंबर आया है. इसे आगे पढ़ाओ. एक ही तो तेरी बेटी है. तेरा खूब नाम करेगी. हम भी कवनो कोर कसर नहीं छोड़ते थे. ऊ जो मांगे हम देते.

केवाड़ी जब खोलवाए तो नाहीं खुली आ टुनिया के घुटल-घुटल आवाज़ सुनाई पड़ी — अम्मा... बचाओ... बापू...

हमार देही में आग लग गयी, दीदी. टीन के चदरा से बनी केवाड़ी पर हम ज़ोर से लात मारे. ऊ धड़ाम से खुली गयी. देखे, हमार मरद जो हम का प चढ़त है ऊ हमरे बेटी प सवार है आ ऊ गरई मछरी जैसी छटपटा रही है...

एक माई अपनी आंखन के सामने अपनी बिटिया की इज़्ज़त के तार-तार होत कैसे देख सकती थी? आ लुटेरा कौन उसका बाप!

बग़ल में मसाला पीसने वाला पत्थर की लोड़ी रखी थी. हमरा शरीर में ख़ून खौल-खौल के उछाल मार रहा था. उठा लोड़ी और दनादन मरद के कपार और पीठ पे दे मारे. ऊ खाट से नीचे गिर छटपटात रहा. हमरा प जैसे काली मइया सवार थी. उसे ख़ूब गरियाते दे दना दन लोड़ी से मारते-मारते उसकी मूड़ी का हलुआ बना दिये.

टुनिया कब बाहर भाग गयी थी हम नाहीं जानते. एकाएक हमरे पूरा चाल वाला चिल्लाये पड़े. 'दौड़ो-दौड़ो एक लड़की कुंआ में कूद गयी...'

ख़ून के छीटों से भरे हम दौड़ते बाहर भागे और कुंआ में टुनिया की ओढ़नी देख हम पर पूरा आसमान टूट पड़ा...'' बुका फार के रो पड़ी बिमली.

कविता

मां : तीन कविताएं

✍ शिव डोयले

(१)

पढ़ी लिखी
नहीं है मेरी मां
पर मेरा चेहरा
पढ़ लेती है
गाली देना तक
नहीं आता
लेकिन मेरी ख़ातिर
ज़माने से
लड़ लेती है.

(२)

ये जो
मां की छड़ी है
इसे टिकी रहने दो
पूजा घर के
कोने में
लोग पत्थर को
देवता बना देते
ये छड़ी भी मेरे लिए
किसी देवी-देवता से
कम नहीं.

(३)

जीते जी तो
कभी नहीं चाहा
बेटे ने मां को
बाद मर जाने के
मां की तस्वीर पर
चढ़ाने लगा है
फूल माला,
जलाने लगा है
अगरबत्ती.

झूलेलाल कॉलोनी, हरीपुरा, विदिशा (म. प्र.)-४६४००१.
मो.: ९६८५४४४३५२

गौतमी के भी आंसू बहने लगे. आंसू पोंछ वह बोली — ''बिमली, मैं किसी वकील से बात करती हूं. आखिर तुमने अपनी बेटी की इज़्ज़त बचाने के लिए ही तो अपने राक्षस पति को मारा.''

''दीदी, कोई वकील खड़ा करने की ज़रूरत नहीं. हम छूटकर बाहर आ जायेंगे तो सब लोग हम को गीध की नज़रों से देखेंगे. हर कामुक आदमी हमको सड़क पर का बिछौना ही समझेगा. सोचेगा, कहेगा कि ज़रूर ई बदचलन रही होगी इसलिए अपने रास्ते से अपना मरद के हटा दी. सबका बिछावन बनने से आछा हम एहीं पर रहे.''

''तुम्हारा देवर है न?''

''देवर...हूं...'' बिमली के चेहरे पर घृणा तैर गयी. ''मेरा देवर भी भडुआ है. टुनिया के बाद जब हमको और कोई दूसरा बच्चा नहीं हुआ तो एक दिन ऊ देवर बड़ी बेहाई से बोला रहा, ''भउजी, अगर भइया में अब शक्ति नहीं है तो किसी दिन हमको अजमा के देख लो पूरी क्रिकेट के टीमे खड़ा कर दूंगा.'

यहां से छूट के का हम बहरी चैन से रह पायेंगे, दीदी? एकदम नहीं. हमार लिलाट पर ख़ूनी का दाग़ लग गया तो लगा रहे, पर हम ख़ुश हैं कि हमरी टुनिया के ऊपर कोई दाग़ नहीं लगा. वह मर गयी त का लेकिन ऊ एकदम निरउठ (शुद्ध) है. उसका मरना नहीं चाहता था लेकिन ऊ अपना अपमान नहीं सह पायी आ गहरे कुआं में डूब ...'' फिर वह बिलख-बिलख कर रो पड़ी.

''मैडम, चलिए. साहब घर जा रहे हैं आपको भी छोड़ते जायेंगे.'' कांस्टेबल वहां आयी.

''बिमली, मैं जाती हूं, फिर आऊंगी.''

''नाहीं दीदी, मत आना यहां दुबारा. आपको हमार किरिया...''

''ओह बिमली, यह क्या कह रही हो? ऐसा मत बोलो,'' गौतमी के हाथ उसके हाथों पर मजबूत हो गये. फिर उसने पर्स से सारे रुपए निकाल उसे पकड़ा दिये.

''दीदी, इत्ते रुपए?''

''तुम्हारी पगार के हैं और कुछ ख़र्च के लिए. बाद में मैं कमल के साथ आऊं...''

''नाहीं दीदी...मत आना...'' हाथ छुड़ा कर बिमली दीवार से लग फ़फ़क पड़ी.

उसके आंसू गौतमी के दिल पर कोड़े की तरह बरस रहे थे. वह अपने आंसू लिये जल्दी से बाहर भाग गयी.

द्वारा श्री भगवान प्रसाद, कोयला दुकान,
राजा बाज़ार, कटेया रोड,
बिहिया - ८०२१५२,
जिला- भोजपुर (बिहार),
मो.-७०५०१०७२८५.

आमने-सामने

'लेखन मेरे जीने का साधन'

✍ नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, जयप्रकाश त्रिपाठी और डॉ. अशोक गुजराती से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है नीतू सुदीप्ति 'नित्या' की आत्मरचना.

ईश्वर का सबसे बड़ा आशीर्वाद होता है अच्छी सेहत और दौलत का ढेर! पर ये दोनों मुझसे कोसों दूर! क्या ख़ूब हैं मेरे हाथ की रेखाएं, कर्म की गति अति महान! मैंने किये होंगे पिछले जन्म में घोर पाप और जघन्य अपराध, जो बीमारी लेकर ही पैदा हुई हूं और उसे लेकर ही दुनिया से जाना है.

बिहिया (बिहार) में २० नवंबर १९८० को साधारण परिवार में मेरा जन्म हुआ पैर के भर से उल्टा. परिवार में इकलौता बड़ा लड़का और चार लड़कियों के बाद बेटे की आस में माता-पिता पलकें बिछाये थे. माता ने लात मारी और बहनों ने बकरी का दूध पिलाकर मुझे पाला. लड़की होने की सज़ा मुझे मिली — उपेक्षा, तिरस्कार और लापरवाही.

कभी-कभी किसी की पीठ या कमर में चिलहकते हुए दर्द होता है जिसे गांव की भाषा में झूठा समाना या शरीर में चोर घुसना कहते हैं. मैं पीठ या कमर पर ११ या २१ बार लात से धीरे-धीरे मार देती तो ठीक हो जाता. बहुत लोगों को मैंने झारा. कुछ लोगों का ही दर्द ठीक नहीं हुआ. आज भी लोग मुझसे झरवा लेते हैं.

ख़ैर, जन्म से ही मुझे सर्दी, बुखार, हंफनी और खांसी रहती. मेरे दिल की धड़कन ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से धड़कती. छह माह के होने पर डॉक्टर ने इस बात की पुष्टि कर दी कि मेरे दिल में एक छोटा सा सुराख है जो ऑपरेशन से भर जायेगा. ख़र्च पचास-साठ हज़ार रुपये.

लड़की पर इतना ख़र्च क्यों कोई करता. भला लड़का रहता तो कोई बात भी होती. उसके लिए ज़मीन-मकान व गहने बेचकर या कर्ज़ लेकर ऑपरेशन करवा दिया जाता पर एक मामूली लड़की के लिए ऐसा करना कहां संभव था. अपने भाग्य से जिये या मरे. वैसे भी सिर पर चार लड़कियां ख़ुद सवार थीं. खायेगी, पियेगी बड़ी हो जायेगी तो झुनी (मेरे घर का नाम) का छेद ख़ुद भर जायेगा.

ऑपरेशन करवाने की क्या ज़रूरत ? रिश्तेदारों ने समझाया और अनपढ़ माता-पिता ने यह बात गांठ बांध

ली. मुझे ख़ूब उजले रसगुल्ले खिलाये जाते और दूध पिलाया जाता ताकि मैं ठीक हो जाऊं. सर्दी-खांसी की दवा चलती रही.

समय पर बड़े भाई और तीन बहनों की शादी हो गयी. शादी के पांच साल बाद भाई दो बेटों के पिता बने. ख़ूब उत्सव मने. पर उन ख़ुशियों में नज़र लग गयी. भाई सिर दर्द से परेशान रहने लगे. ८-९ फरवरी १९९३ को पता चला कि उन्हें ब्रेन ट्यूमर है. वह भी लास्ट स्टेज़ पर. ऑपरेशन करने के लिए अभी रुपये जुटाये ही जा रहे थे कि १० तारीख को ही ट्यूमर ख़ुद ही फट गया और भाई गुज़र गये. ३४-३५ साल के हट्टे-कट्टे खानदान में सबसे ज़्यादा (बी. ए. ऑर्नर्स) पढ़े इकलौते नौजवान भाई की मौत किसी से बरदाश्त नहीं हो रही थी. घर में भूचाल आ गया. चारों तरफ़ चीख़ पुकार व आंसू. उस समय बड़ा भतीजा ढाई साल का और छोटा छह माह का गोद में था.

मुझे देख सब कहते कि रोगी लड़की ज़िंदा है और पहलवान जैसा भाई मर गया. उसके बदले यही मर जाती.

भाभी दोनों बच्चों को लेकर ससुराल में ही रहीं. कभी माता और भाभी में जम कर झगड़ा होता. दोनों एक दूसरे पर दोषारोपण करतीं कि तू मेरा बेटा खा गयी, तो तू मेरा पति खा गयी.

भाई घर में ही फ़ोटो स्टेट की मशीन रखे हुए थे. उनकी मौत के बाद कोई नौकर नहीं टिक पाता. मैं थोड़ा-सा मशीन चलाना जानती थी. उसकी ज़िम्मेदारी मुझ पर आ गयी. उस समय मैं नवी कक्षा में थी. पढ़ने में साधारण थी.

१९९५ में मैंने सेकंड डिवीज़न से मैट्रिक पास किया. लड़-झगड़ कर इंटर में दाख़िला करवाया. मुश्किल से दो-चार दिन कॉलेज़ गयी. सिर पर फ़ोटो स्टेट की दुकान थी. मेरे कॉलेज़ जाने पर ग्राहक लौट जाते. अत: मुझे कॉलेज़ नहीं जाने दिया जाता.

घर के एक कोने में मशीन रखी हुई थी. बाहर कोयले की दुकान. दिन भर ग्राहक आते-जाते. मैं दोनों दुकानें देखती. हिसाब रखती. मुझे मशीन की जानकारी उतनी नहीं थी. हमेशा बिगड़ जाती.

इंटर की परीक्षा के फ़ॉर्म भरे जा रहे थे इधर मेरी तबीयत ख़राब हो गयी. महंगी-महंगी जांच और सुई-दवाई में हज़ारों रुपये स्वाहा हो गये. माता ने ऐलान कर दिया कि तेरी दवा करवाऊं या फॉर्म भरवाऊं. फ़ॉर्म नहीं भरा जायेगा.

पढ़ने की मेरी ख़ूब इच्छा थी. भले मेरे शरीर में शक्ति नहीं थी पर मैं किरण बेदी जैसी बनना चाहती थी.

बैंक का एक चपरासी फ़ोटो स्टेट करवाने आता था उससे मैंने अपनी घड़ी साढ़े तीन सौ में बेच दी, क्योंकि माता ने मुझे फ़ॉर्म के रुपये देने से मना कर दिया था. उतने रुपये से होता क्या. वह रुपये भी दवा में चले गये.

कॉलेज़ की सारी लड़कियां अपने एडमिट कार्ड पर प्लास्टिक चढ़वाने और फ़ोटो कॉपी करवाने मेरे पास ही आतीं. साथ में एक तीर छोड़तीं — नीतू तुम परीक्षा क्यों नहीं दे रही हो?

मन घायल पक्षी की तरह रो-तड़प कर रह जाता. १९९७ की बात है. सबके अनुसार खाने-पीने से मेरा छेद भर गया होगा. अत: डॉक्टर से दिखाकर इसकी शादी कर दी जाये. पटना के हृदय रोग के प्रसिद्ध डॉक्टर अखिलेश शरण मेरा इलाज़ करते थे. सारी जांचें कर उन्होंने बताया कि छेद नहीं भरा है. मैं एम्स दिल्ली में रेफर कर देता हूं. जल्द से जल्द ऑपरेशन करा दीजिए. लाख रुपये तक ख़र्च होंगे.

रुपए नहीं हैं का रोना रोकर माता ने सुई-दवा लिखवा ली. हर २१ दिन पर १२ लाख पॉवर की पेनिडियोर सुई कमर में पड़ने लगी. सुई लेने के नाम पर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते. वह इतनी पॉवर वाली सुई थी कि देते-देते में जम जाती. आंखों में आंसू भर बाप रे बाप करती. बाद में मुझसे चला नहीं जाता.

ब्रेन ट्यूमर से इकलौता लड़का चला गया तो भला मुझ लड़की का ऑपरेशन क्यों कोई करवाता? कहीं ऑपरेशन करने के बाद मैं मर जाती तो? पैसा पानी में चला जायेगा.

सबकी यह सलाह हुई और सब कान में तेल डालकर सो गये. दवा खाओ और जब तक ज़िंदा रहना है जियो. फिर कुछ ऐसी घटना बहुत तेज़ी से घटी कि अपने भी पराये नज़र आने लगे. — 'अपने सगे ही दिल को आरी से चीरते हैं, ख़ून गिरने पर उसे रंग कहते हैं.'

दिन-रात आंसू गिराते, दर्द से छटपटाते उसी समय ईश्वरीय सत्ता को मैंने जाना. उन संघर्ष भरे दिनों में दुर्गा मां की शक्ति का अनुभव किया और दिल की अतल गहराइयों से साहित्य का झरना फूट पड़ा. देवी गीत के माध्यम से अपने दुख-दर्द, आंसू व तकलीफ़ आदि लिखने लगी. भले लेखन की दृष्टि से वे सब कोरे बकवास थे पर उनमें मेरे मन

के सच्चे भाव थे. उन गीतों का कैसट निकले यही सपना देखती.

एक दिन वे गीत मैंने अपनी गहरी दोस्त उषा को पढ़ाये, उसके आंसू गिर पड़े. लेकिन उसने कहा कि यह कहानी की तरह हैं. इससे अच्छा तुम कहानी लिखो.

'तुम्हीं कुछ लिख कर बताओ.' मैंने कहा.

उस समय उषा ख़ूब सारे कहानी-उपन्यास पढ़ चुकी थी और मैं सत्तरह साल की उम्र में भी गुड़-गोबर थी. कहानी-उपन्यास क्या होते हैं मुझे पता नहीं था. उसने एक बाल कथा लिखकर मुझे आइडिया दिया, साथ में एक क़लम उपहार में दी ताकि मैं ख़ूब लिखूं.

अपनी कल्पना से मैंने एक कहानी बड़ी सहेलियों के ऊपर लिखी. ख़ूब सारी हिंदी व्याकरण की ग़लतियों के साथ. फ़ोटो स्टेट के एक ग्राहक द्वारा आयी 'प्रिया विनोदनी' पत्रिका देखी-पढ़ी. उसमें मेरी प्रतिक्रिया छप गयी. मुझे बहुत ख़ुशी हुई. और अपनी वह कहानी 'दोस्ती का रहस्य' वहां भेज दी. जो २००१ में छपी. कहानी बहुत पसंद की गयी. बधाई पत्र आये और मेरे लेखन की गाड़ी चल निकली.

१९९७ से लिखना शुरू किया और २००१ में मेरी कहानी छपी. लगातार चार सालों तक अस्वीकृति का दंश झेला मैंने. उसी समय ख़ुद पर दो लाइनें लिखी थीं —

'बार-बार असफल होना है, बार-बार प्रयत्न करना है और एक ना एक दिन सफल होना ही है.'

उस समय तक मैंने बहुत सारे उपन्यास-कहानियां पढ़ डाले थे. अब तो क़लम मेरी ज़िंदगी बन गयी थी. दिन-रात लेखन में डूबी रहती. मेरे हाथों में काग़ज़-क़लम देख माता एकदम आग बबूला हो जाती. मैं उससे छुप-छुप कर लिखा करती. सब यही कहते पढ़-लिख कर क्या करोगी तुम्हें तो मरना है. लेकिन यह बात मुझे मंजूर नहीं थी. ठीक है, मौत जब आनी होगी आयेगी पर इसके पहले मैं कुछ अच्छे काम तो कर लूं. हाथ पर हाथ धरे बैठना मुझे सदा से ही मंजूर नहीं रहा. तन की शक्ति से ज़्यादा मेरे मन की शक्ति हमेशा से ही मज़बूत रही है. तभी मैं अपने संघर्षों को पांव तले कुचलती रही हूं.

लिखने से मेरा मन खिला-खिला रहता. मन के मैल काग़ज़ पर उतर मोती बन जाते.

कुछ लोगों ने मुझे होमियोपैथिक दवा खाने की सलाह दी ताकि मेरा छेद भर जाये. मुश्किल से मैंने २-३ महीने दवा खायी और कस कर मेरी तबीयत ख़राब हो गयी. सोये हुए लोगों की आंख खुली कि इसका ऑपरेशन करवा दिया जाये. चौथे नंबर वाले जीजा जी ने आधा ख़र्च देने के लिए कहा और आधा मेरी दवा के रुपए. वही २००२ में मुझे लेकर एस. जी. पी. जी. आई. लखनऊ गये.

सारी जांचें देखकर ग़ुस्से में डॉक्टर ने उन्हें जबर्दस्त डांटा, ''जब पटना के डॉक्टर ने १९९७ में ही नीतू को ऑपरेशन करवाने के लिए दिल्ली रेफर कर दिया था तो उस समय क्यों नहीं करवाया? जाइए, अब इसका ऑपरेशन नहीं होगा.''

फिर मुझे एम्स दिल्ली ले जाया गया. वहां दिल में छेद के मरीज़ छह मास से लेकर बारह-पंद्रह साल के थे. और मैं सबसे बड़ी बाइस साल की! सारी जांचें फिर हुईं. डॉक्टर ने कहा, ''उम्र बढ़ने के साथ सुराख बड़ा हो गया है. अब इसका ऑपरेशन नहीं हो सकता. जब तक ज़िंदा रहेगी रोज़ दवा खायेगी.''

''मैडम, इसकी शादी...''

''शादी नहीं हो सकती, क्योंकि जब यह प्रेगनेन्ट होगी तो इसकी जान ख़तरे में पड़ जायेगी.''

वाह रे मेरी चालबाज क़िस्मत! जब ऑपरेशन करने की उम्र थी तो उस समय लोगों ने लापरवाही की. रुपये ना होने का रोना रोया और जब रुपये जुटे तो ऑपरेशन की उम्र निकल गयी.

अपनी ज़िंदगी का फुल-फाइनल कर मैं लौट आयी. अब मेरी ज़िंदगी में कुछ नहीं बचा था सिवाय मेरी एक बित्ते की क़लम के. हज़ारों-हज़ारों पन्ने मैंने रंग डाले थे. उसी समय मैंने दहेज, प्यार और बलात्कार पर हिंदी और भोजपुरी में उपन्यास लिखा. जो धारावाहिक रूप में 'संवरी' के नाम से छपा.

डॉक्टर के ना करने के बावजूद अंधविश्वास में पड़ कर मुझे रांची में एक जगमोहन बाबा के पास भेजा गया कि उनकी कृपा से छेद भर जायेगा. उन्होंने कुएं का पानी फूंक कर मुझे पीने के लिये दिया और उससे ऐसी ठंड लगी कि नाक-मुंह से ख़ून चालू हो गया.

२००३ का वही समय था जब छिनमस्तिका मंदिर (रजरप्पा, झारखंड) से उषा के लिए शंखा चूड़ी ख़रीद रही थी. उन देवी मां की कृपा से अचानक मेरे मन में एक बात आयी कि क्या कभी मैं यह शंखा चूड़ी पहनूंगी? क्या मेरी

कभी शादी होगी? उसके पहले शादी के नाम से मैं चिढ़ती थी. उसी मंदिर में शादी का बीज मेरे अंदर पड़ गया.

एक औधड़ ने मुर्गा और एक ओझा ने खस्सी की बलि मुझसे मांगी. 'मेरा छेद भरे या न भरे पर मैं किसी की जान नहीं लूंगी,' कहकर मैं वहां से चलती बनी.

पर अंधविश्वास में पड़ एक ग़लती मुझसे हो गयी. एक भक्तिन के चक्कर में पड़ दवा खाना छोड़ 'गुलकंद' खाने लगी. गुलकंद पान में डाल कर खाया जाता है. जितना वाह-वाह करके मैंने गुलकंद खाया था उतनी आह-आह करके कलेजे को खंगाल-खंगाल कर क़रीब डेढ़ महीने ख़ून की उल्टियां हुईं. मैं एकदम मरणासन्न. उस समय सोचा था अगर इस बार बच गयी तो इस पर एक कहानी लिखूंगी.

'गुलकंद' शीर्षक से वह कहानी 'सुमन सौरभ' में छपी. उसमें टी. बी. की बीमारी का चित्रण था.

२००४ में अंबाला से मैंने कहानी-कला का कोर्स किया. डॉ. महाराज कृष्ण जैन जी और श्रीमती उर्मि कृष्णजी के बारे में जाना. इनके बारे में जानने के बाद मेरे अंदर शादी का पड़ा बीज वटवृक्ष बन गया. सोचती उर्मि मां की तरह कोई लड़का भी मेरी ज़िंदगी में आये और डॉ. जैन सर की तरह मेरी भी नैया पार हो जाये. कोर्स के दौरान उर्मि मां के बहुत क़रीब आ गयी थी मैं. संघर्ष करके जीवन जीने की कला उन्होंने ही तो मुझे सिखायी.

कोर्स के बाद हिंदी और भोजपुरी में निरंतर छपने लगी थी. दर्जनों लेखक मित्र बने.

२५-२६ साल की मैं कुंआरी लड़की सभी रिश्तेदारों की आंखों में कांटों की तरह चुभ रही थी. बीमारी छुपाकर मेरी शादी करवाने की बात होने लगी. मैंने इंकार कर दिया. सब मुझ पर हंसते कि कोई जान बूझकर मक्खी नहीं निगलेगा. अब तुझे मरने के बाद ही हल्दी लगेगी. मेरा दिल त्राहिमाम कर उठता.

एक लेखक मित्र ने मेरा इंटरव्यू लिया और वह २००७ में 'रूप की शोभा' में छपा. उसी समय डॉ. लारी आज़ाद की एक कविता का मेरा भोजपुरी अनुवाद भी छपा. इंटरव्यू पर दर्जनों खत आये. विदेश से भी दो पत्र आये. किसी सिलवासा शहर से अरुण 'मायूस' का पत्र आया लिखावट मोतियों जैसी. उनकी चार-पांच ग़ज़लें 'रूप की शोभा' में छपी थीं. जनाब अपनी ज़िंदगी से मायूस और अनाथ थे.

फ़ोन पर ही मैंने उन्हें प्रपोज़ कर दिया साथ में अपने लेखनी दिमाग़ से एक बच्चा गोद लेने का आइडिया निकाल लिया. वे राजी हो गये. उनकी शिक्षा, उम्र मेरे ही बराबर थी. वे प्लास्टिक कंपनी में काम करते थे.

यह बात जान घर में कोहराम मच गया. आंधी-तूफ़ान सब आ गये. हर कोई खिलाफ़. क़दम-क़दम पर संघर्ष करते हुए मैं यहां तक पहुंची थी और उस समय अपने वजूद के लिए लड़ रही थी. मैं शादी न करूं यह समझाने के लिए सब रिश्तेदारों को बुलाया गया. दोनों भिन्न जातियों के. इसलिए और किच-किच. मैं अपनी ज़िद पर अड़ी रही. मुझे एक साथी की ज़रूरत थी जिसके कंधे पर सिर रख कर मैं भी रो सकूं. कोई मुझे भी प्यार करे. ऐसे में एक लड़का मेरी सारी स्थिति देख–समझ मुझसे शादी करने के लिए तैयार था तो मैं भी चट्टान बनकर घर वालों से लोहा लेने के लिए तैयार थी.

बाद में शादी के लिए सब राजी हुए मगर मुझे रुपए देने से इंकार कर दिया. मैं हर महीने दो-तीन हज़ार रुपए की दवा खाती हूं. एक कंगाल इंसान के लिए इतने रुपयों की दवा खाना बहुत बड़ी बात होती है.

लेखक, जज श्री दिनेश चंद्र दूबे, जी के पास सारी स्थिति लिख भेजी. उनका फ़ोन आया तो घर वाले डर गये कि बित्ते भर की छोकरी के पास घर बैठे ही जज का फ़ोन आने लगा. कहीं यह पुलिस न बुला दे. तब मेरी दवा के क़रीब एक लाख रुपए और दो-चार गहने मिले.

बिहिया के ही श्री महभीन माई के मंदिर में ११ जुलाई २००८ को मेरी शादी हुई. 'कन्यादान' दीदी-जीजा ने किया. माता-पिता शादी के खिलाफ़ थे.

इसके पहले हम दोनों से कोर्ट में यह लिखवाया गया कि भविष्य में हम चल-अचल संपत्ति पर दावा नहीं ठोकेंगे. अपने मनपसंद साथी के साथ छत्तीस घंटों का सफ़र लगा छत्तीस सेकंड में ही बीत गया. मैं सिलवासा आ गयी. क़िराये के मकान में गृहस्थी बसायी. मेरे संघर्ष ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा और दो महीने बाद ही अरुण जिस कंपनी में काम करते थे वह जल कर ख़ाक हो गयी. सारे कामगार लौट गये घर. ख़ूब प्रार्थना का फल रहा कि उनको दूसरी कंपनी में भेज दिया गया.

'हमारा महानगर' में भोजपुरी हीरो मनोज तिवारी का

हर रविवार लेख छपता था. मैंने उनके सचिव से संपर्क किया. मुझे शुरू से ही भोजपुरी फ़िल्मी लेखिका बनने का शौक़ था. 'दगा काहे दिहले सजनवा' का कथानक लिखकर उन्हें भेजा. उन्होंने कहा कि कहानी ठीक है. प्रोड्यूसर खोजो. मैं कहां जाती प्रोड्यूसर ढूंढ़ने — मुंबई में रहने की मेरी औक़ात नहीं थी. फिर साहित्य की तरफ़ मुड़ गयी.

फिर हम दमण आ गये. सारी औरतों को ड्यूटी करते देख मेरा भी मन करता. अरुण ने मुझे एक शृंगार की दुकान खुलवा दी. बिन पूंजी की छोटी दुकान. ऊपर से उनकी नौकरी छूट गयी. किसी ने मदद नहीं की. बस जैसे-तैसे दाल-रोटी मिलती.

आपकी शादी कब हुई और बच्चे कितने हैं? सारी ग्राहक औरतें मुझसे पूछतीं. ख़ुद पर कहानी लिखी जो 'कथाबिंब' में 'सरोकार अपने-अपने' शीर्षक से छपी.

अकेले दुकान चलती नहीं थी और मेरी तबीयत हमेशा ख़राब हो जाती इसलिए क़रीब चार साल बाद उसे बेच दिया. उन्हीं रुपयों से अपना पहला कहानी संग्रह 'हमसफर' छपवाया जिसका पटना में विमोचन हुआ.

विमोचन में शामिल होने के लिए अरुण गुजरात से आये. लेखन में वे मेरा भरपूर सहयोग करते हैं और अच्छा लिखने के लिए प्रेरित करते हैं. मैं उनके साथ छह साल रही. जब-जब मेरी तबीयत ख़राब हुई उन्होंने मेरी ख़ूब सेवा की. (अपनी सौ पेज की आत्मकथा 'कुछ पल...' में मैंने सारी बातें सविस्तार लिखी हैं.)

हमें एक लड़की गोद लेने की ख़ूब इच्छा थी. पर हम दोनों के संघर्षों ने हमें इतने ख़ून के आंसू रुलाये कि हमारी हैसियत मिट्टी में मिल गयी. पति की प्राइवेट नौकरी वह भी हमेशा छूटने ही वाली, मामूली पगार और महंगा शहर. सिर्फ़ दो लोगों का ख़र्च चलाना मुश्किल हो गया. अरुण ने मुझे मायके रहने को कहा. नवंबर २०१४ में विमोचन से पहले मैं बोरिया-बिस्तर बांध जुलाई में ही घर आ गयी. वे यहां–वहां नौकरी कर हर महीने मुझे रुपये भेजते हैं. उन्हीं रुपयों में मैं दवा खाती हूं. पर लोगों की नज़रों में है कि मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया. किसको समझाऊं? लोगों का काम है हंसना और अपना काम है आगे बढ़ना.

फ़िल्म और कहानी में ही संघर्ष करने वालों को बड़े से बड़े पद पर पहुंचा हुआ दिखाया जाता है मगर हक़ीकत में ऐसा होता कहां है?

सौ में से सिर्फ़ दो लोग ही अपनी मंज़िल पाते हैं. बाक़ी के अठानवे लोग संघर्ष करते-करते गुमनामी में ही मर खप जाते हैं.

मैं अब संतोष धन अपनाना सीख रही हूं. जितना मुझे मिला या ना मिला सब नारायण की कृपा! ईश्वर की जिस पर विशेष कृपा रहती है वह उसका धन अपहरण कर लेते हैं. इसलिए तो मुझसे 'लक्ष्मी' हमेशा से कोसों दूर रही हैं. बस, सरस्वती की ही कृपा है जो मुझे थोड़ा लिखना आ गया. सच कहूं तो शायद मैं बहुत अच्छा नहीं लिख पाती, इसलिए बहुत ज़्यादा अस्वीकृत होती हूं.

मेरी आत्मकथा 'कुछ पल....', लघुकथा संग्रह, बाल कथा संग्रह और भोजपुरी में दो क़िताबें छपने के लिए तैयार हैं, मगर छपेंगी कैसे मुझे ख़ुद नहीं पता.

पाठकों, मैं जन्म से लेकर मृत्यु तक दवा, डॉक्टर और परहेज पर ही आश्रित हूं और रहूंगी. दिन प्रतिदिन मेरी सेहत गिरती जा रही है. बहुत-सी बीमारियों ने मुझ पर अपना डेरा जमा रखा है. आपसे हाथ जोड़ कर एक प्रार्थना है कि अगर आपके आस-पास कोई बच्चा दिल में छेद की बीमारी से ग्रसित है तो आप आगे बढ़कर सरकारी या गैरसरकारी संगठनों से आर्थिक मदद दिलवाकर उसका ऑपरेशन करवाने में उसकी सहायता करेंगे. लोगों में भ्रम है कि खाने-पीने या बड़े होने पर छेद भर जायेगा मगर यह सच नहीं है. दिल में सुराख का एक मात्र इलाज़ सिर्फ़ और सिर्फ़ ऑपरेशन है और कुछ नहीं. वह भी दस-बारह साल की छोटी उम्र में ही.

मैंने आज तक इस दुनिया को कुछ नहीं दिया मगर मेरी बहुत इच्छा है कि मेरे मरने के बाद मेरे नेत्र-दान हो जायें. इसलिए मैंने फ़ॉर्म भी भर दिया है. किसी सामाजिक संस्था से जुड़कर नारियों के लिए कुछ करना चाहती हूं. लेखन मेरा सच्चा साथी, मेरा प्यार और मेरे जीने का एकमात्र साधन है. बस सार्थक लिखती रहूं और नारायण जपती रहूं. बाक़ी कोई इच्छा नहीं.

द्वारा श्री भगवान प्रसाद,
कोयला दुकान, राजा बाज़ार, कटेया रोड,
बिहिया-८०२१५२
जिला- भोजपुर (बिहार),
मो. : ७०५०१०७२८५

लघुकथा

चुनौती

✍ ओमप्रकाश बजाज

हमारी पड़ोसिन श्रीमती सिंह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझतीं. पति बेचारे की तो बिसात की क्या है! शायद ऊपरवाला भी कभी-कभी खिलवाड़ के मूड में आ जाता है कि ऐसे लोगों को अपनी-सी कर लेने की हर सुविधा साधन और छूट देता जाता है. घर परिवार में श्रीमती सिंह का हर शब्द वेद-वाक्य माना जाता है. हां, वह अगर किसी की सुनती और मानती हैं तो पारिवारिक पुरोहित जी की.

श्रीमती सिंह की इकलौती बहू के बच्चा होने वाला था. पुरोहित जी ने गणना करके उन्हें बताया कि शिशु यदि अगले महीने की ११ तारीख़ को, ११ बज कर, ११ मिनट, ११ सेकंड पर जन्म ले तो अत्यंत शुभ होगा. बात श्रीमती सिंह के मन में बैठ गयी.

डॉक्टर भी उनकी आदत और स्वभाव के सामने विवश हो गयी. तय हुआ कि बहू की प्रसूति ऑपरेशन से इस हिसाब से होगी कि शिशु का जन्म निर्धारित समय पर सुनिश्चित हो जाये. तदनुसार सब तैयारियां भी हो गयीं.

१० और ११ की मध्य रात्रि से धुआंधार वर्षा का क्रम जो शुरू हुआ तो चलता ही चला गया. जगह–जगह पेड़ गिरने से आधे से अधिक शहर की बिजली चली गयी और कई इलाके अंधेरे में डूब गये. टेलीफ़ोन सेवा बाधित हो गयी. सड़कों पर घुटने-घुटने पानी बहने लगा. सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी. शायद श्रीमती सिंह की मनमानी को कुदरत भी चुनौती देने पर उतर आयी थी. निर्धारित समय आया और चला गया. न ऑपरेशन हो पाया न प्रसूति!

✍ विजय विला, १६६- कालिंदी कुंज, पिपलिहाना, रिंग रोड, इंदौर-४५२०१८.
मो. : ९८२६४९६९७५

ग़ज़लें

✍ नवीन माथुर 'पंचोली'

कुछ रुलाकर देखता हूं कुछ हंसाकर देखता हूं,
मैं हमेशा यूं किसी को आजमाकर देखता हूं ।
मानता हूं जब किसी को मैं ख़ुशी का देवता,
तब उसी की बंदगी में दिल लगाकर देखता हूं ।
कुछ तो उसके साथ होंगे चाहने वाले मेरे भी,
उस गुजरते कारवां को पास जाकर देखता हूं ।
जब किसी की शायरी में भाव कुछ अपने लगे,
मैं उन्हें अक्सर लबों से गुनगुनाकर देखता हूं ।
कम-ज़्यादा, दुःख-सुखों की कामनाओं से परे,
मैं बराबर ज़िंदगी को रख-रखाकर देखता हूं ।
मैं ख़्यालों में उड़ूं, और चांद पे उतरा करूं,
इस तरह मैं अपने मन को गुदगुदाकर देखता हूं ।

अमझेरा, जिला धार-४५४४४१.
मो.: ९८९३११९७२४.

✍ मंजुला उपाध्याय 'मंजुल'

धूप से ठंडी छांव में जाकर देख लिया,
चौराहे पर दीप जलाकर देख लिया ।
संसद से सड़कों तक सोये लोग मिले,
बस्ती-बस्ती अलख जगाकर देख लिया ।
लाशों के अहसास भला क्या बोलेंगे,
दीवारों से सर टकरा कर देख लिया ।
चार क़दम भी साथ न कोई चल पाया,
अपने हाथों घर सुलगाकर देख लिया ।
हंसते-हंसते साथ मेरे चल देते हैं,
जख़्मों को पायल पहना कर देख लिया ।
मंजुल उसकी फितरत अब क्या बदलेगी,
हर मुमकिन को ठोक बजाकर देख लिया ।

सम्राट चौक, पूर्णियां-८५४३०१.
मो. : ९४३१८६५९७९.

सागर/सीपी

मंच मेरी पहचान है, व्यंग्य लेखन मेरा निजी सुख . . .

✍ सुभाष काबरा

(हास्य कवि और मंच संचालक सुभाष काबरा से लेखिका मधु अरोड़ा की बातचीत)

❖अपने शुरुआती दिनों के विषय में कुछ बतायें.

१९७४ में पहली बार मुंबई आया था और दूसरी बार १९७६ में. पारिवारिक व्यवसाय में पिताजी के पुरुषार्थ के कारण अकोला में बहुत अच्छे दिन भी देखे थे और फिर सरकारी पॉलिसी के कारण बहुत ख़राब दिन भी देखे...तो मन बना लिया था कि कम उम्र से ही परिवार को सहयोग करूंगा इसलिए १९७६ में ही नौकरी शुरू कर दी जब मेरी उम्र महज़ २१ साल की थी.

अपने शहर अकोला में १९७२-७३ में लिखने पढ़ने वालों ने एक संस्था बनायी थी — 'अक्षर'. सुभाष पटनाइक जी, नरेंद्र पुरोहित जी, घनश्याम अग्रवालजी, और कई साहित्य अनुरागी शामिल होते थे गोष्ठियों में और सब अपनी ताज़ा और मौलिक रचना सुनाते थे. मुंबई आने से पहले इन गोष्ठियों में पढ़ने का लाभ यह हुआ कि पढ़ते समय पैर कांपने बंद हो गये. अकोला एक छोटा प्यारा-सा शहर. मस्ती भरी ज़िंदगी थी वहां. कई मित्र, रिश्तेदार... समय कैसे कट जाता था पता ही नहीं चलता था. कोई ज़िम्मेदारी भी नहीं थी. कॉलेज़ के बाद कुछ करने की चाह में मुंबई आया तो यहां की भीड़-भाड़, लोगों के मिज़ाज और व्यस्तता देख कर पगला गया था. पर ज़िद थी कि इदरइच कुछ करने का है. तो लगा रहा. ख़ुद को एक बड़े शहर का अभ्यस्त इंसान बनाने के कुछ सीन आज भी नज़रों के सामने ऐसे तैर जाते हैं जैसे कल की ही बात हो. मुंबई ने बहुत कुछ सिखाया. आत्मनिर्भर होना भी. वरना छोटे शहर में शायद ज़िंदगी सहारों के भरोसे ही गुज़र जाती और कभी किसी को सहारा देने के क़ाबिल बन ही नहीं पाता. यह भी सच है कि पत्नी सुमित्रा ने हर मोड़ पर दुःख-सुख में साथ न दिया होता तो शायद फिर से अपने शहर लौट जाता. लेकिन वह हमेशा हौसला बढ़ाती रही...यह कह-कहकर कि एक दिन आपको भी कोई स्टेज़ पर बुला कर गुलदस्ता देगा काबराजी.

❖अकोला से जुड़ी कोई घटना पाठकों से शेअर करना चाहेंगे?

कॉलेज़ के दूसरे वर्ष में एक वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए सहपाठी विनय के साथ नागपुर स्पर्धा में मेरा भी नाम आया. तब मामाजी आये हुए थे. वे रोज़ घुमाते थे, ख़ूब प्यार करते थे. राजा बाबू कह कर बुलाते थे...तो कौन नागपुर जाये. मैंने मना कर दिया. प्रिंसिपल कृष्ण गोपाल गांधीजी ने बुला कर समझाया कि 'सुभाष, तुम जाओ या ना जाओ, तुम्हारी मर्ज़ी... , कोई और चला जायेगा, लेकिन बेटा एक बात हमेशा याद रखना. अच्छे मौक़े बहुत कम मिलते हैं, उन्हें ठुकराना नहीं चाहिए. बाद में पछतावा होता है. 'मुझे तो काटो तो ख़ून नहीं क्योंकि सर अपने काम में लग गये थे और मेरी ओर देख भी नहीं रहे थे. मैं खड़ा रहा तो बोले — 'जाओ, मामाजी के पास.' मुझे रोना आ गया और मैंने माफ़ी मांगते हुए कहा कि 'सर ग़लती हो गयी. मैं जाऊंगा.' सर ने आशीर्वाद दिया और हिंदी के सर को बुला कर मुझे विषय समझाने को कहा. मैं और विनय नागपुर गये और ३७ कॉलेज़ों में हमारी अकोला की टीम तीसरे नंबर पर रही. वह मेरा पहला राज्य स्तरीय पुरस्कार था. लौटने के बाद कॉलेज़ और घर में जो स्नेह मिला वो बोनस था. प्रिंसिपल सर अब नहीं हैं लेकिन उनकी वह बात मुझे याद है और कई मौक़ों पर काम आती है.

❖मुंबई में आये, तो आप को नौकरी व रहने की जगह के लिए संघर्ष करना पड़ा?

मुंबई में नौकरी के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा. एक

परिचय

सुभाष काबरा

जन्म व शिक्षा : अकोला

सीरियल : अब तक तीन सौ रेडियो कार्यक्रम, तीन हज़ार पांच सौ कवि सम्मेलन, धारावाहिकों के ३००० एपिसोड.

कृतियां : कबूतरखाने के लोग... (दुष्यंत विधा की रचनाएं...१९७८), कुछ तो है (कविताएं...२०००), मझदार के पार, (भजन...२०१०), पढ़ो, समझो और मत मानो (व्यंग्योक्तियां...वर्ष, २०११), बच्चों की बातें...बाल कविताएं...२०१४.

उपलब्धियां : दीक्षित पुरस्कार, महेश्वरी सभा, रोटरी क्लब, लायंस क्लब, स्वर्ण पदक, लाफ्टर क्लब द्वारा, सद्भावना पुरस्कार, जन चेतना पुरस्कार, वि. जे. टी. आई ऑफ मुंबई, मंच सारथी पुरस्कार, मारवाड़ी सम्मेलन का श्रेष्ठ, संचालक पुरस्कार, विश्व हिंदी समिति, न्यूयॉर्क. इसके अलावा कई स्थानों पर मानद सदस्यता, सदस्य–मारवाड़ी सम्मेलन, राजस्थानी सम्मेलन, माहेश्वरी प्रगति मंडल, फ़िल्म्स रायटर असोसिएशन.

टेली फ़िल्म : लोक परलोक, इश्क़ कंबख्त इश्क़, घूंघट के पट खोल, बांदी.

सीरियल : इन्तेकाम, सिंहासन, नर्तकी, मुल्क़, विलायती बाबू, हेराफेरी, घर जमाई, रिश्ते, हम आपके हैं वो, अलविदा डार्लिंग, चिंगारी, घराना, कलाकार्ज–टेलेंट हंट कार्यक्रम, घर नो ना घाट नो (गुजराती), साथ साथ.

८/बी खत्री अपार्टमेंट, बॉम्बे टॉकीज़ लेन, स्कूल रोड, मालाड (प.), मुंबई-४०००६४.

ई मेल- *kforkabra@gmail.com*

मित्र के सौजन्य से बिरला ब्रदर्स की एक कंपनी में तुरंत नौकरी मिल गयी. सैलरी थी ४१४ रुपये प्रति माह, जो उस समय बहुत अच्छी मानी जाती थी. हां, मुंबई में नौकरी तो मिल गयी लेकिन रहने की जगह तो कंपनी भी नहीं दे पायी थी. मेरे बड़े भाई साब मुंबई में थे. भाभी आयीं तो एक संस्कारी परिवार से. संयुक्त परिवार में विश्वास रखने वाली. और पत्नी भी इसी गोत्र की मिली. यही कारण रहा कि बरसों तक दोनों परिवार साथ-साथ रहे. बच्चे बड़े हुए और जगह की ज़रूरतें बढ़ीं तब तक ईश्वर ने इतना समर्थ कर दिया कि अपना घर ले पाया... जो हर किसी का सपना होता है. आज भी हम दोनों भाइयों के घर आमने-सामने हैं और वही प्रेम सुरक्षित है.

❖क्या, आपने सोचा था कि मुंबई आपका दामन ख़ुशियों से भर देगा?

मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मुझ जैसे मात्र कामर्स स्नातक को इस मुंबई नगरिया से इतना कुछ मिल जायेगा। यह बात साबित हुई कि इच्छाशक्ति हो तो समुंदर का खारा पानी भी मीठा हो जाता है और पत्थर दिल लोग भी प्यार करने लगते हैं. नकारात्मक विचारों वाले लोग पसंद नहीं आते. ६० वर्ष की उम्र में भी १६ घंटे इसी उम्मीद में काम करता हूं कि इस काम का परिणाम सकारात्मक और अच्छा ही होगा. परिवार में किसी ने कभी एक लाइन नहीं लिखी थी लेकिन मैं जो थोड़ा बहुत लिख पाया उसका श्रेय मां को है. मात्र ८वीं पास मैया, अच्छे साहित्यकारों के साथ–साथ रामायण, गीता, शिव पुराण पढ़ने की आज भी शौक़ीन है. यज्ञ शर्मा जी और शरदजी के लेख पढ़ कर कहती हैं — तू ऐसा कब लिखेगा?

❖आपने मंच संचालक बनना ही क्यों पसंद किया और इसमें आपके प्रेरणास्त्रोत कौन रहे?

रामरिख मनहरजी के एक आयोजन में ट्रेन लेट होने की वजह से कुछ कवि नहीं पहुंच पाये थे. मैं उन दिनों 'माधुरी' में ख़ूब छपता था. सो मनहरजी ने बतौर हास्य कवि प्रस्तुत कर दिया और श्रोताओं का अच्छा प्रतिसाद भी मिला. बस, हास्य कवि का सफ़र शुरू हो गया. मनहरजी मुझे ओपनिंग बैट्समैन की तरह दस मिनट देते थे और समाज के कार्यक्रमों में समाज बंधु बहुत प्यार देते थे...जिसे मैं आज भी अपनी अतिरिक्त कमाई मानता हूं. एक दिन व्यंग्य के शिखर-पुरुष शरद जोशीजी ने सुना और पास बुलाकर बड़े स्नेह से कहा — तुम में संचालक छुपा हुआ है. अपने आयोजन शुरू करो, वरना भीड़ में खो जाओगे. उस रात मुझे नींद नहीं आयी. शरदजी ने बुलाकर बात की तो पगला गया. अकोला के मेरे गुरु घनश्याम अग्रवालजी और श्रद्धेय बैरागीजी ने भी ऐसा ही कुछ कहा तो मैंने कुछ छोटे-मोटे आयोजन करने शुरू कर दिये और रास्ता बनता चला गया. मेरे जीवन में ये लोग हमेशा मेरी श्रद्धा के पात्र रहे और आज भी हैं. सौभाग्यशाली हूं कि बड़े क़द के माणिक वर्माजी, शैल चतुर्वेदीजी, सुरेंद्र शर्माजी, अशोक चक्रधरजी, उर्मिलेशजी, ब्रजेंद्र अवस्थीजी, सत्यनारायण सत्तनजी, आलोक भट्टाचार्यजी और दामोदर खड़सेजी का भरपूर स्नेह और मार्गदर्शन मिला.

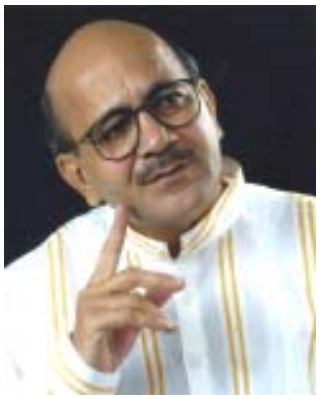

सुभाष काबरा

मधु अरोड़ा

❖आप मंच संचालक हैं, हास्य कवि हैं... आपने अपनी रचनात्मकता में अलग अलग पैटर्न अपनाये हैं... इसके लिए आपके प्रेरणास्त्रोत कौन रहे ?

स्व. शैल चतुर्वेदी जी की बातचीत की शैली और शरद जोशीजी की व्यंग्य धार मुझे बहुत प्रभावित करती थी. दोनों गुरू जनों को दोनों क्षेत्रों में प्रेरणा मानता हूं और संचालन के मामले में उर्मिलेशजी को जिनकी श्रोताओं पर बड़ी ज़बरदस्त पकड़ रहती थी वो भी पूरी काव्यात्मकता के साथ.

❖धारावाहिकों की ओर आपका झुकाव कैसे हुआ ?

जिन दिनों सुरेंद्र भाई साहब को लेकर चार लाइना प्रोग्राम करता था उन्हीं दिनों सीरियल निर्माता दिनेश बंसलजी ने मुझ मूडी और अनाड़ी से एक सीरियल लिखवाया. वो भी हिट हो गया और सीरियल लेखन की डगर खुल गयी.

❖आप टी. वी. से, रेडियो से विभिन्न रूपों में जुड़े रहे, इसमें आपको किनका सहयोग मिला ?

इस पत्थर दिल शहर में आप किसी क्षेत्र में ठीक-ठाक काम करने लगो तो मौक़े बहुत मिलते हैं. मुझे भी टी. वी., रेडियो में मित्रों के सहयोग से काम मिलने लगा. यहां भाई राजेश रेड्डी का जिक्र न करना भूल होगा. उनका स्नेह मुझे बहुत सारे आयोजन दे गया. यज्ञ शर्माजी समय-समय पर डांट भी लगाते रहे और प्यार भी लुटाते रहे.

❖आप व्यंग्य लिखते हैं, आपको व्यंग्य लिखने की प्रेरणा कहां से मिली?

शरद जोशीजी के संपर्क में आने के बाद मेरा झुकाव व्यंग्य लेखन की ओर हुआ. मैंने परसाईजी, शरदजी, शुक्लजी की हर रचना को बार–बार लगातार पढ़ा. लेकिन व्यंग्य पढ़ने का मौक़ा दिया 'चौपाल' ने... बल्कि, शेखर सेन, अशोक बिंदल, राजेंद्र गुप्ताजी ने उसे तराशा भी.

❖चूंकि आपको इतना गहन अनुभव है, बतायें कि पहले की तुलना में आज के व्यंग्य किस प्रकार अलग हैं ?

मेरी समझ में पहले की तुलना में आज के व्यंग्य लेखन में नये विषयों और जानकारी का भंडार तो है लेकिन बहुत कम रचनाकार विषय से न्याय कर पाते हैं, यही कारण है कि आज भी व्यंग्य के शिखर पुरुष ही कोट किये जाते हैं. फिर शौक़िया लेखकों की बाढ़-सी आ गयी है. कोई नया रचनाकार अच्छा लिखता है तो बड़ा सुकून मिलता है.

❖आपको नहीं लगता कि आज जो व्यंग्यकार लिख रहे हैं, उनमें लिखने से ज़्यादा छपने की छटपटाहट है?

छपास के रोग ने कई अच्छे लेखकों को सतही बना कर रख दिया. तुरंत लिखने और तुरंत पुरस्कार और तुरंत रेखांकन की प्रवृत्ति ठीक नहीं है. मूल्यांकन की बात तो तब उठनी चाहिए जब कोई भी रचनाकार अपना समग्र लेखन कर चुका हो. जल्दबाजी ठीक नहीं है. देर सबेर अच्छी कलम रेखांकित होती ही है.

❖आप मंच पर ख़ुद को सहज अनुभव करते हैं या लेखन में... यदि आपसे दोनों में से किसी एक के चुनाव के लिए कहा जाये, तो आपकी प्रमुखता में क्या रहेगा?

मंच मेरी पहचान है. व्यंग्य लेखन मेरा निजी सुख. मंच इसलिए भी आकर्षित करता है कि वहां प्रतिक्रिया और पेमेंट तुरंत है, बिना किसी गुटबाजी और दुराग्रह के. जब लोग ३–४ घंटे हंसते हुए बिताते हैं तो बावजूद सारे बौद्धिक आरोपों के... उस रात अच्छी नींद आती है. मंचों का स्तर बनाये रखने की कोशिश ज़रूर करता हूं लेकिन दावा नहीं करता. जब श्रोता ख़ुद हलकी बात सुनने को मरे जा रहे हों, तो नयी पीढ़ी भटक ही जाती है.

❖मंच के साथ–साथ आप साहित्य की अन्य विधाओं से भी जुड़े हैं, आज जिस प्रकार से विभिन्न स्तरों पर विमर्श चल रहे हैं, उनके विषय में आपके विचार अपेक्षित हैं –

एक वक़्त था जब साहित्यकार विभिन्न माध्यमों से अपनी बात पाठकों तक पहुंचाता था और निर्णय पाठकों पर छोड़ देता था. उसे उस जनता जनार्दन पर ख़ुद से ज़्यादा भरोसा होता था, जिनके लिए वो लिख रहा है. अब लेखन से ज़्यादा विमर्श पर ज़ोर है. जिनके लिए विमर्श होता है उन्हें शामिल किये बिना विद्व जन यह तय करते हैं कि इनके लिए यह बात ठीक है और यह नहीं. नारी विमर्श और पुरुष विमर्श पर आयोजन होते हैं जबकि मेरी पीढ़ी परिवार विमर्श को महत्त्व देती रही. कुछ पुरुष और कुछ स्त्रियां... दूसरे की तुलना में स्वयं को महान दर्शाने की प्रतियोगिता में जुट गये. प्रकृति के दो पूरक तत्वों को आपस में प्रतिस्पर्धी बना कर रख दिया. ये अशुभ है. एक पुरुष के कर्म या एक औरत की जीवन-शैली से आप पूरी प्रजाति को कटघरे में खड़ा नहीं कर सकते. पर यह हो रहा है? जो निजी तौर पर अच्छा नहीं लगता. यह तो टी वी के सर्वे जैसा लगता है कि १२५ लोगों की राय को १२५ करोड़ की बता दो.

❖परिवार विमर्श से आपका क्या तात्पर्य है ? इससे घर में कलह होना संभव नहीं होगा क्या ?

बाबूजी के ज़माने से मुझे कुछ घरों में निभायी जा रही एक परंपरा बड़ी अच्छी लगती है. कम से कम एक वक़्त पूरे परिवार का साथ बैठकर भोजन करना. आज भी कई परिवारों में यह होता है, और केवल भोजन ही नहीं, परिवार विमर्श भी हो जाता है. ज़रूरी समाचार, गतिविधियां, त्योहार, छुट्टियां, पढाई, क्या कुछ नहीं. परिवार के पुराने सदस्यों के साथ नये भी जुड़ जाते हैं. कोई घोषणा नहीं होती, कोई शोर नहीं मचता लेकिन सबकी सब बातें आपस में शेअर हो जाती हैं. निकटता बढ़ती है. एक दूसरे की ख़ुशी, परेशानी, मज़बूरी, मस्ती, सब समझ में आती है और ग़लतफहमियों के लिए कोई स्थान ही नहीं बचता. एक दूसरे को उसकी उम्र के हिसाब से समझते रहने का अवसर मिलता है और अलग से किसी नारी-विमर्श या पुरुष विमर्श की ज़रूरत नहीं पड़ती. ये बड़े-बड़े नामों वाले विमर्श आख़िर होते किसके लिए हैं? स्वजनों और परिचितों-मित्रों के लिए ही न? तो इसके लिए इतना बाई-पास जाने की ज़रूरत क्या है... ये कभी समझ नहीं पाया. उन लोगों की अनुपस्थिति में क्या विमर्श करना जिनके हित के लिए किया जाना है.

❖भारतीय समाज में विवाह संस्था को आज भी मज़बूत माना जाता है, पर जिस तरह से लिव-इन-रिलेशनशिप घर करती जा रही है, इसे आप किस रूप में देखते हैं?

पश्चिमी सभ्यता ने लिव-इन-रिलेशनशिप के बीज हर देश में रोप दिये हैं. हमें कुछ कहने की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि आप २५ विवाहित जोड़ों और २५ लिव-इन-रिलेशनशिप जोड़ों के १० वर्षों का अध्ययन कर के देख लीजिए. कौन सुखी रहा और कौन परेशान, पता चल जायेगा. कुछ युवा तो औरों से अलग दिखने और अति मॉडर्न कहलाने के चक्कर में भी ये पराक्रम कर लेते हैं.

❖आज का युवा वर्ग हिंदी साहित्य से अलग–थलग नज़र आता है, ऐसा कहा जाता है. यदि ऐसा है, तो आप किसे ज़िम्मेदार मानते हैं ?

विकास के साथ साथ अंग्रेज़ी रोज़ी–रोटी कमाने का ज़रिया बनती चली गयी... सो युवा वर्ग का अपनी जड़ों से कटना और अंग्रेज़ीदां होना लाजमी था. पचास वर्ष के आसपास के हम लोग भी इस माहौल के लिए कम दोषी नहीं हैं. हम अपने बच्चों को ये सिखाना भूल गये कि कार के लिए अंग्रेज़ी की शरण में जाओ लेकिन संस्कार के लिए अपनी मातृभाषा को मत भूलो.

❖अब तक आपकी जो पुस्तकें आयी हैं, आप उनके विषय में बतायें... इस तरह की रचनाएं लिखी जानी चाहिए ? ऐसा आपको क्यों लगा?

मेरी पांच किताबें आ चुकी हैं, अभी एक व्यंग्य लेखों की क़िताब की तैयारी है. पहली किताब दुष्यंत विधा की ग़ज़लों की — 'कबूतरखाने के लोग,' भूमिका कमलेश्वरजी, दूसरी क्षणिकाओं की — 'कुछ तो है,' भूमिका डॉक्टर

दामोदर खड़से जी, तीसरी व्यंगोक्तियों की — 'पढ़ो, समझो और मत मानो,' भूमिका विश्वनाथ सचदेवजी, चौथी भजनों की — 'मझधार के पार', भूमिका अनूप जलोटा जी और पांचवी 'बाल मन की कविताएं,' 'बच्चों की बातें', भूमिका निदा फाजली साहब. लेबल जरूर हास्य कवि और संचालक का लग गया लेकिन अलग-अलग विधाओं में सीखने और लिखने की लालसा ने शायद यह काम मुझ से करवा लिया. विद्यार्थी बनकर.

❖ साहित्य तो प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है, पर आज भी बाल-मनोविज्ञान पर पुस्तकों की कमी है. इस बारे में आप क्या सोचते हैं?

आज़ादी के बाद के बाल साहित्य के बारे में मेरी बहुत अधिक जानकारी नहीं है लेकिन पुस्तक मेलों और बुक स्टालों से गुज़रते हुए ये ज़रूर महसूस करता हूं कि हम बड़े, बच्चों की बातें तो बहुत करते हैं लेकिन उनके लिए लिखने में बहुत कंजूस हैं. जबकि बच्चों की किताबों के पाठक तो उनके अभिभावक भी होते हैं. यह स्थिति बदलनी चाहिए.

❖हिंदी साहित्य जगत में जो प्रमोशन प्रक्रिया सक्रिय है, इसे आप किस रूप में लेते हैं?

यह सच है कि इस दौर में आप गुफा में बैठ कर लेखन करें और वहीं दफ़ना दें तो बात नहीं बनती. जानकारी और किताबों की उपलब्धता जरूरी है... लेकिन साथ ही साथ यह भी लगता है कि कुछ खेमे बन गये हैं. कुछ लोग मिल कर आपस में ही एक दूसरे की जय-जयकार करते रहते हैं. नये लोगों को आज भी वह प्लेटफ़ॉर्म नहीं मिल पाता जिसके वे हक़दार हैं. इस स्थिति को बदलने के लिए स्थापित रचनाकारों का बड़प्पन, प्रकाशकों का सहयोग और सरकारी और ग़ैर सरकारी संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है. कई चर्चाओं और साहित्यिक समारोहों में भी भेद-भाव रेखांकित होता है तो नये रचनाकार टूट जाते हैं. कुछ लेखन बंद कर देते हैं और कुछ ग़लत राह पर निकल जाते हैं. कई बार अपने प्रमोशन में दूसरों की आलोचना अधिक होती है. यह भी ठीक बात नहीं है. प्रमोशन एक माध्यम है लेकिन असली तत्व तो अच्छा लेखन है. दुर्भाग्य से आज स्वयं के लेखन को श्रेष्ठ और अन्य के लेखन को निकृष्ट घोषित करने की बीमारी बढ़ती जा रही है. मुझे परसाईजी की एक बात याद आती है कि — 'एक पोस्ट कार्ड से भी हम एक अच्छी बात संजो सकते हैं. तो एक रचना से तो काफ़ी कुछ लिया जा सकता है, लेकिन हम नाम, दाम, सम्मान के चक्कर में पड़ कर कुछ ग्रहण करने की प्रवृत्ति से बचने लगे हैं.' पोस्ट कार्ड युग की यह बात आज भी सबक के तौर पर ली जानी चाहिए.

❖आज लोगों के व्यक्तित्व पर फ़ेसबुक का बहुत प्रभाव पड़ता नज़र आ रहा है, इसे आप किस रूप में देखते हैं?

फ़ेसबुक का जन्म जिस उद्देश्य के लिए हुआ था उसे अधिकतर लोग समझ ही नहीं पाये. यह जानकारियों और विचारों के आदान-प्रदान की बजाय आपसी रंजिशों और एक दूसरे को नीचा दिखाने के अधिक काम आ रहा है. या फिर ख़ुद के महिमा मंडन और अपने विचार दूसरों पर थोपने के. एक इतने बड़े प्लेटफ़ॉर्म का दुरूपयोग दुखदायी है,

❖आपको लगता है कि फ़ेसबुक, वॉट्सअप आदि ने परिवारों में संवादहीनता की स्थिति ला दी है?

संचार और संवाद की तमाम सुविधाएं स्वागत की पात्र होती हैं लेकिन इनका गुलाम बन जाना बेवकूफ़ी है. सड़क पार करते हुए नेट-चेट के चक्कर में एक्सीडेंट, घर परिवार में मोबाइल के कारण कलह, क़रीबी रिश्तों में तनाव जैसे दुष्परिणामों के बावजूद यदि संयम न रखें तो हमें पढ़े-लिखे और समझदार कहलाने का कोई अधिकार नहीं है.

❖उदीयमान व्यंग्यकारों से आप अपनी ओर से कोई संदेश देना चाहें तो....

मैं इतना वरिष्ठ और अधिकारी तो नहीं कि नयी पीढ़ी को कोई उपदेश दे सकूं लेकिन मन कहता है कि नये लेखक नये-नये आयाम खोजें. मौलिकता को बनाये रखें. इनके पास ज्ञान-प्राप्ति और रेफ़रेन्स की जो सुविधा है, वह हमारी पीढ़ी के पास नहीं थी. तुरंत आकलन और पुरस्कारों के चक्कर में न पड़ें, न ही किसी खेमे से जुड़ें... क्योंकि शब्दों में सरस्वती वास करती है और जिसे सरस्वती का आशीर्वाद मिल जाये वह किसी जुगाड़ का मोहताज़ नहीं होता.

मधु अरोड़ा
एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स,
फिल्म-सिटी रोड, मालाड (पूर्व),
मुंबई-४०००९७.
मो. : ९८३३९५९२१६

बाइस्कोप

रंगमंच, लेखन और फ़िल्म का संगम- जावेद सिद्दीकी

✍ सविता बजाज

'रंगमंच' का दीवानापन कलाकार को कहीं चैन नहीं लेने देता. भले ही फाके करने की नौबत आ जाये. यह आलम हिंदोस्तान के कोने-कोने में फैला है. हर कोई अपनी कला को छोटे-छोटे आलों में क़ैद न करके आसमान तक पहुंचना चाहता है. भाषा कभी आड़े नहीं आती. रंगमंच का संसार बड़ा विराट है, जटिल है, और बंबई, थिएटर का गढ़, रंगमंच का समुद्र अपार सीमाओं में कला का सुनहरा संसार. यहां दूर-दूर के इलाक़ों से जब कलाकार फ़िल्मों में काम पाने की चाहत से आते हैं तो रंगमंच से बढ़कर उन्हें कोई दूसरा मंच नहीं लगता जहां वे अपनी कला का प्रदर्शन कर सकें.

बड़े-बड़े कलाकार आये और गये जैसे संजीव कुमार, राजेश खन्ना, राज कपूर, बलराज साहनी, सत्यन कप्पू स्टार कलाकार तो थे ही लेकिन जीवन की आख़री सांस तक थिएटर का मोह नहीं छोड़ सके. अनगिनत नाम हैं, लिखती जाऊं तब भी अंत न हो. मैं भी जब फ़िल्म करने बंबई आयी तो 'इप्टा' और बलराज साहनी के ग्रुप से जुड़ गयी. देर रात रिहर्सल ख़त्म करके भूखे पेट सोना पड़ता था. शो ख़त्म होने के बाद टैक्सी फ़ेयर मिलने की बात तो दूर घर तक नहीं छोड़ा जाता था. जवान थी अकेले रात दो-तीन बजे डर लगता था. सोचती कहीं कुछ अनहोनी हो गयी या बीमार हो गयी तो... टेलेंट धरा का धरा रह जायेगा. कोई मदद करने वाला नहीं, मुझे रंगमच की सीढ़ी नहीं बनना. एन. एस. डी. की हूं, सब मेरे काम से वाकिफ़ हैं. बहुत सोचा और सोचने के बाद ईप्टा का प्ले 'देवयानी का कहना हैं' के सत्यदेव दूबे के साथ सोलह शो करने के बाद नाटक छोड़ दिया और लेखन अभिनय और रेडियो प्रोग्रामों में बिज़ी हो गयी. लेकिन मैं थिएटर की हूं जिसकी वजह से आज तक लोग मुझे मेरे काम से जानते हैं, थिएटर कभी नहीं छोड़ सकी. नाटक देखने का सिलसिला आज भी चलता रहता है.

इसी रंगमंच पर बरसों पहले एक दुबले, पतले, ख़ूबसूरत जवां लड़के से मुलाक़ात हुई जो ड्रामे लिखता था – करता था और फ़िल्मों और दूरदर्शन के सीरियलों में लिखने का काम शुरू कर चुका था. बहुत भला, गुणी, अच्छे संस्कारों वाला वह शख़्स जावेद सिद्दीकी है. बोलता तो एक-एक लफ़्ज तोल-तोल कर. प्यारी उर्दू बोली — लगता कहीं मीठे पानी का झरना बह रहा हो. अपनी बात कहकर मुस्कुराता और मेरी आंखों में ताकता मानो पूछ रहा हो सविता, मेरी बात ठीक है न! जावेद से मुझे भाई जैसा लगाव था. हम उम्र था मेरा. लिहाजा एक दिन उनके घर भी पहुंच गयी. बिन बुलाये, वह हैरान हो गया था. जावेद का पूरा परिवार इनके साथ इनकी हर कला से जुड़ा है. पत्नी बला की ख़ूबसूरत है, रंगमंच के पीछे का काम करती है — वेश सज्जा काम संभालती है, यानी कॉस्ट्यूम. मैं जावेद के बारे में बड़े गर्व से कहती हूं कि जावेद ने अपनी कला की दुनिया और पारिवारिक दुनिया बड़ी ख़ूबी से सोच-समझ कर बसायी. बच्चों को अच्छे संस्कार दिये. अच्छा ताल-मेल बनाये रखते हुए सफलता की सीढ़ियां चढ़ते गये जावेद. मैंने इनके और इनके परिवार के बारे में आज तक कोई ग़लत बात न पढ़ी और न सुनी, जो अपने आप में एक बहुत बड़ी बात है. अच्छे पढ़े-लिखे दोस्तों का संपर्क रहा. सत्यजीत रे से लेकर सुभाष घई तक के लिए लिखा. शौहरत, नेम-फ़ेम, पैसा सब कुछ मिला. दर्जनों अवार्ड मिले लेकिन पांव कभी नहीं लड़खड़ाये. शायद यही वजह है कि जावेद को मैंने हमेशा अपना भाई समझा.

पाठकों, एक बार मैं गुलज़ार साहब के दफ़्तर में ब्लाउज़ का नाप देने गयी, मैं उनकी फ़िल्म 'बूढ़ी काकी' में काकी का पात्र निभा रही थी. एक जवां प्यारी सी लड़की मेरा नाप ले रही थी. बोली — आंटी आपने मुझे पहचाना नहीं, मैं लुबना हूं, आप के भाई जावेद सिद्दी की की बेटी.

जावेद सिद्दीकी

१३ जनवरी १९४२,
बी. ए. (उर्दू-साहित्य), रामपुर (उ. प्र.).

उर्दू-साहित्य में बी. ए. करने के बाद १९५९ में आप बंबई चले आये. जहां 'ख़िलाफ़त डेली' और 'इंकलाब' दैनिकों में पत्रकार के रूप में काम किया. बाद में, 'उर्दू रिपोर्टर' नाम से अपना अख़बार निकाला. १९७७ में सत्यजीत रे की 'शतरंज के खिलाड़ी' के संवाद-लेखक के रूप में अपने फ़िल्म कैरियर की शुरुआत की. तबसे लेकर अब तक ५० से अधिक फ़िल्मों के संवाद-लेखन, स्क्रीन-प्ले आदि से संबद्ध रहे हैं. आप नाट्य-लेखन में भी सक्रिय रहे हैं. १९९४ (बाज़ीगर) में और १९९६ (दिलवाले दुलहनिया ले जायेंगे) में फ़िल्म फ़ेयर पुरस्कार से आपको अलंकृत किया गया. १९९६ में ही आपको स्क्रीन एवार्ड (राजा हिंदुस्तानी) भी प्राप्त हुआ.

१०४, वीनस-२, फोर बंगलोज़,
अंधेरी (प.), मुंबई-४०००५८.

आप हमारे पुराने घर में आयी थीं न, तब आपके दो चोटी गूथें लंबे बाल थे. मैं सॉरी कह बोली —तुम्हें सब याद है, जीती रहो, और आगे वह बोली - सलीम आरिफ़ जो हमेशा आपको डायलॉग वग़ैरह बताते हैं न, मेरे पति है. वह भी तो एन. एस. डी. के हैं. मैं मुस्कुराकर रह गयी और बच्ची को गले लगाकर ख़ूब प्यार किया.

जावेद आज भी पहले की ही तरह हर क्राफ़्ट में सक्रिय है, आज भी जवान लगता है अवार्ड मिलते रहते हैं और जीवन के हर रंग में अपने आपको रंगकर उसका लुत्फ़ उठाता है. रंगमंच पर भी सक्रिय है, लेखन की दुनिया में अपनी क़लम द्वारा नये–नये आयाम पैदा करता है. कभी मास्को में फ़िल्म फ़ेस्टीवल में जूरी का सदस्य बनता है तो कभी ''तुम्हारी अमृता'' नाटक लिखकर पूरे विश्व में वाह-वाही बटोरता है — तहलका मचा देता है. नाटक में शबाना आज़मी और फ़ारूख शेख़ थे. जो ख़ुद अपने आपमें अभिनय की ख़ान साबित होते हैं. यह ड्रामा भारत का पहला ऐसा ड्रामा था जिसमें एक्टर ख़तों को पढ़ता था और अपने–अपने अभिनय के जलवे बिखेरता था.

बेहतरीन कार्ययोजना, शिक्षक, अभिनेता, नाट्य निर्देशक, लेखक, दर्शकों के लिए बेहतरीन होस्ट, उच्चतम बौद्धिक कलात्मक मानव के लिए कोई भी समझौता न करने वाले जावेद का कोई साथी नहीं है. जावेद ने हमेशा ऐसा थिएटर किया और लिखा जो अपने समय को प्रतिबिंबित करे. अपने युग की चुनौतियों का उत्तर दे. दर्शकों ने भी जावेद को ऊपर उठाने में ख़ूब मदद की. चाहे वह थिएटर था, लेखन या फिर निर्देशन. यह जादू तभी संभव हो पाता है जब दर्शकों को एक अर्थपूर्ण अनुभव का आभास हो, जब उनमें रचनात्मक प्रक्रिया में भागीदारी का भाव बने और यह सब जावेद के थिएटर में हुआ.

आप जिस तरफ़ जायें वहीं और ज़्यादा चुनौतियां और संभवत: ज़्यादा अवसर होते हैं जो जीवन को मोहक रोमांचक बना देते हैं. इसमें आपका बेहद सावधानी और अनुशासन के बिना काम नहीं चलता और जावेद ने इन सब बातों का जीवन में कड़े से पालन किया तभी तो जावेद रंगमंच, लेखन और फ़िल्मों का संगम कहलाता है.

जावेद कला के क्षेत्र में एक अनमोल नाम है, अपनी लेखनी से बेजोड़ नाम कमाया और मीठे स्वभाव की वजह से लोगों के दिलों में राज करते हैं. इनका पूरा परिवार अभी भी रंगमंच से जुड़ा है. बच्चे, बाप के नक़्शे क़दम पर अच्छे संस्कारों की वजह से चल रहे हैं. बाप का नाम रोशन कर रहे हैं. कभी परिवार की मर्यादा पर आंच न आने दी. क्योंकि सफलता की सीढ़ियां चढ़ना बहुत कठिन होता है. जावेद फ़िल्म इंडस्ट्री के लिए एक बहुत बड़ी मिसाल है कि नाम, धन, अवार्ड पाने के बाद भी परिवार और काम में सामंजस्य कैसे रखा जाता है.

हाल ही में एक लंबे अरसे के बाद जावेद मिले तो बोले — ''अरे सविता, वैसी की वैसी लगती हो.'' मैं हंस दी, अरे आप भी कहां बूढ़े हुए, पहले से ज़्यादा जवान दिखते हो. हां जलन होती है यह जानकर कि गुलज़ार साहब की सोहबत में हर वक़्त रहते हो क्योंकि वह भी तो निर्देशन छोड़कर आपके साथ थिएटर से जुड़ गये हैं.

जावेद ने ज़ोर का ठहाका लगा दिया और बोले — ''अरे सविता बहना, कौन रोक रहा है, आ जाओ न, हमारे रंगमंच से दोबारा जुड़ जाओ.''

मैं कोई जवाब न दे बस मुस्कुरा दी.

पो. बॉक्स १९७४३, जयराज नगर,
बोरीवली (प.), मुंबई-४०००९१.
मो.: ९२२३२०६३५६

स्त्री पक्षधरता की कहानियां

✍ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

नया रास्ता (कहानी संग्रह) **: सूर्यदीन यादव**
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, ४२३१/१ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. **मू.** २९५/- रु.

सूर्यदीन यादव के पास अनुभवों और संवेदनाओं की अकूत संपत्ति जान पड़ती है. इसी पूंजी के बल पर वे कभी कहानी लिखते हैं, कभी कविता रचते हैं, कभी संस्मरणों में रम जाते हैं. 'नया रास्ता' उनका नया कहानी संग्रह है और जैसा कि उन्होंने स्वयं इंगित किया है, ''ये कहानियां उस माटी से उपजी हैं, जहां कहानीकार जन्मा, पला और बड़ा हुआ है.'' इन कहानियों में विशेषत: ग्रामीण परिवेश की कुरूपताएं और विसंगतियां मुखर हैं. 'झड़ पड़ते टिकोरे' में शिक्षा जगत की गिरावट प्रत्यक्ष है. एक साधारण-सी ग़लतफ़हमी बदलू की शिक्षा के रास्ते बंद कर देती है. गांव का नैतिक पतन 'बदले की भावना' के केंद्र में है. आपसी फूट के कारण गांव, घर की एकता और सौहार्द को आघात पहुंचता है.

संग्रह की सर्वाधिक कहानियां स्त्री की नियति और उसकी संघर्ष-चेतना से संबंधित हैं. एकाध अपवाद छोड़ दें तो सर्वत्र कहानीकार की पक्षधरता पुरुषप्रधान समाज में जूझ रही नारी के साथ है. 'बदौलत औरत' कहानी में 'बड़ी दर्द से नइहर छूटत है... ससुरे की राह कठिन पहाड़ जस होत है.' कहकर नारी की विवशता को उभारा गया है. 'श्याम-रचना' में केंद्रीय नारी के हिस्सों में दु:ख ही दु:ख है. श्याम-रचना स्वयं ससुराल त्याग कर निर्दयी पति का परित्याग कर एक अन्य पुरुष का वरण करती है. 'नया रास्ता' में विवाहित पार्वती द्वारा अन्य पुरुष के सहयोग से संतान को जन्म देने का साहस विलक्षण है और मूल्य-संक्रमण की गवाही देता है. 'दाग़' कहानी में कहानीकार ने खुले तौर पर पुरुष की निरंकुशता का विरोध किया है — ''वे समझते हैं कि एक लाचार स्त्री को भोगकर घायल कर दिया, स्त्री कोई हिरणी नहीं कि शेर उसे घायल करके खा जाये.... एक स्त्री को घायल या पीड़ित करने से सारा समाज घायल हो जाता है.''

''बदौलत औरत'' कहानी में औरतों के प्रति अनादि काल से हो रहे अन्याय की चर्चा है. देवकी और योगमाया के मिथक के माध्यम से स्त्री की यातना को उजागर किया गया है. कंस द्वारा योगमाया के वध को सूर्यदीन यादव ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नया अर्थ दिया है — ''बेटी भी माता–पिता की जायदाद में हकदार-वारिसदार हो सकती है.''

इन कहानियों में स्पष्ट स्त्री पक्षधरता है, लेकिन एकाध अपवाद भी हैं. 'बदले की भावना' कहानी में लड़की को दोषी ठहराना एक पक्षीय दृष्टि है! आंख-मिचौली का खेल लड़की की तरफ़ से शुरू होता है. लड़का उसका साथ देता है. अंतत: सारा दोष लड़के पर थोप दिया जाता है. इसी तरह 'चिर्री' कहानी में, जेल में चिकवा की जिस तरह हत्या की जाती है, उसका प्रतिवाद कम, समर्थन ज़्यादा लगता है.

लगता है सूर्यदीन जी बहुत जल्दी में रहते हैं. इसलिए कई कहानियां 'कहन' की दृष्टि से शिथिल रह गयी हैं. 'सरहद' तो कहानी कम, निबंध अधिक लगती है. 'इसकी' भी कहानी कम 'आपबीती' अधिक लगती है, वस्तुत: इन कहानियों की शक्ति यथार्थ चित्रण और परिवेश की प्रामाणिकता से स्फूर्त मानवीय 'विज़न' के कथात्मक रचाव में निहित है. जहां हर मोहकमे में नारी को प्राथमिकता दी जा रही है वहां आज का रचनाकार कहानियों में भी नारी को अग्रिमता देने की कोशिश कर रहा है. उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है सूर्यदीन यादव का 'नया रास्ता' कहानी संग्रह. इसे नारी प्रधान कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी. प्रथम कहानी 'चिर्री' से लेकर (कुछेक को छोड़कर) अंतिम कहानी 'वह सड़क' नारी जीवन की सम-विषम परिस्थितियों को उभारती है. चिर्री में प्रेमिका चिर्री की उसके प्रेमी द्वारा हत्या गांव में तहलका मचा देती है. 'झड़ पड़ते टिकोरे' में बदलू और सुंदरी की पढ़ाई अल्पायु में छूट जाती है. 'बदले की भावना' में

सदाव्रत गांव की किशोरी नयनी का असफल प्रेम, 'नया रास्ता' की विवाहित पार्वती द्वारा परदेसी पति की अनुपस्थिति में परपुरुष का सहारा ले बेटा पैदा करना, नारी स्वयं नया रास्ता खोज लेती है. 'बदौलत औरत' में दुलहिन का संघर्ष और अन्य स्त्री सलमा के प्रेम में पड़े पति को छुड़ा लेना नारी चेतना का नया रूप है. 'श्याम रचना' निर्दयी पति को छोड़ स्वयं दूसरे पति के साथ चली जा रहती है. 'दाग़' कहानी में स्वाभिमानी पत्नी गुणवंती का स्वभाव और कहना — ''मैं उन औरतों से कम नहीं हू. सब विद्या जानती हूं. नारी चेतना झलकती है. 'प्यार की उपज' में नारी दूसरी नारी को डांट-डपट कर कमजोर बनाती है. 'चेतना' कहानी की चेतना नव समाज निर्माण का आह्वान करती है और ढोंग-पाखंड का विरोध करती है. 'काकी' कहानी में काकी द्वारा ज़मींदारों को फटकारना गांव के लोगों को जागृत करता है. 'बालिका धानपाती' में नारी का भेड़िए से लड़ना नारी चेतना को उकसाता है. 'इसकी' कहानी में नारी स्वच्छंदता और 'सड़क' कहानी में नारी का शोषण के सामने नयी आवाज़ स्पष्ट है.

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ,
डी. रमेश बिहार, अलीगढ़-२०२००१.
मो. : ९८३७००४११३

बिंबों का अनोखा प्रयोग

मधु अरोड़ा

मालिश महापुराण (व्यंग्य) : **सुशील सिद्धार्थ**
प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली.
मूल्य : १५०/-

किसी भी विधा की पुस्तक को पढ़ने की पहली शर्त यह है कि उसमें पठनीयता हो, नये बिंब हों और साथ भाषा में रोचकता व चुटीलापन हो... विशेष रूप से व्यंग्य संग्रह में. इस परिप्रेक्ष्य में व्यंग्यकार सुशील सिद्धार्थ का व्यंग्य संग्रह 'मालिश महापुराण' पठनीय है.

'क्या दुख हैं—वाह' में सरकारी अधिकारियों और तथाकथित लेखकों पर व्यंग्य है... साथ ही साहित्यिक दलालों के लिए नये बिंब... डीडीडी, अर्थात देसी दलाल दल और अंत में फ़ेसबुकिया दोस्ती पर व्यंग्य कि जब सेर को सवा सेर मिलता है जो अनफ्रैंड, ब्लॉक जैसे काम करके भाग लेते हैं/भगा देते हैं. वहीं 'क्रांतिक कवि की सुहागरात' व्यंग्य में सन्नाटा और यामा पात्रों के माध्यम से लेखक ने चिरकुट कवियों और नयी पौध की कवयित्रियों पर व्यंग्य किया है. सुहागरात के सजे कमरे की तुलना प्रांतीय मंच से की है. कविता विविध आयामों से होती हुई प्रयोगवाद तक पहुंची और तब सन्नाटा को नयी कविता काल के आगमन का आभास हुआ. 'मालिश महापुराण' व्यंग्य अपने आप में अनोखापन लिये हुए है. मक्खनबाजी के लिए 'चिकनाई चूणामणि' यह शब्द पहली बार प्रयुक्त किया गया है. लेखक के अनुसार सच्चा तेलू जन्मजात होता है. जिसका लेखन कमज़ोर होता है, वह दीनता एट द रेट ऑफ हीनता डॉट कॉम हो गया है. उनके अनुसार नये कवि की सर्वोत्तम क्षणों की सर्जना, 'शीशी ऊंची रहे हमारी, टुच्चों को हरषानेवाली, स्वार्थ सुधा बरसानेवाली.' इसके बाद मालिश करने की विभिन्न प्रक्रियाओं का वर्णन किया है जो समग्र रूप से मक्खनबाजी का विस्तृत स्वरूप है.

'सब माया है' व्यंग्य में पैसे का महत्त्व है. पैसे के चक्कर में इंसान किसी भी हद तक गिर सकता है. कमज़ोर साहित्यकार और दलालों के अटूट रिश्ते पर व्यंग्य करते हुए लेखक कहते हैं, 'कलियुग के इस दौर का कितना बड़ा कमाल/जितना बड़ा दलाल है, उतना उन्नत भाल.' बेहतरीन व्यंग्य. 'बस ठीक, आप सुनाओ' व्यंग्य में प्रगति और विकास पर व्यंग्य है. चतुर चकत्तों का फैलना और हर चीज़ 'अपूर्व अहमकता' में भटक रही है. अच्छा दोस्त गुप्तचर या जासूस न हो... यह कहकर उन्होंने फ़ेसबुक की प्रवृत्ति की ओर इशारा किया है. किसी दोस्त से मिलने पर आज कुछ न कहें, बस बटन दबा दिया जाये. यह बेबाक़ी सुशीलजी ही कर सकते हैं. 'निर्झर बाबा की किरपा' यह एक प्रवृत्ति है और शरद जोशी जी के शब्दों में, 'साहित्य के बाज़ार में तीन क़िस्म के आलू पाये जाते हैं — 'श्रद्धालु, कृपालु, ईर्ष्यालु' और आधुनिक प्रकार हैं — चिपकालु, लटकालु, महिलालु और दलालालु आदि. अच्छी-अच्छी क़िताबें कबाड़ियों के यहां मिलती हैं और ऐसे पाठकों पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं, 'दरबार से लौटकर मैं क़िताबों के पन्ने फाड़कर गड्डी बना रहा हूं. अब इनमें पराठे लपेटूंगा.' 'मेरी झोली भर दे' में झोलाछाप दलालों पर व्यंग्य है. इनमें

कोई झोल नहीं होती. जितने विश्वास से ये दुनिया को बेवकूफ़ बनाते हैं, उतनी ही आस्था के साथ दुनियावाले भी इन्हें काम पर लगाते हैं.

'बातन हाथी पाइए' में वे कहते हैं कि आज के परम बातूनी युग में तो 'टाक अनलिमिटेड' का सीमाहीन समय है. प्रेम की वाणी के बजाय जमकर झगड़ा होनेवाली वाणी का चलन है और वे कह ही डालते हैं कि आज के समय में अपशब्दों का एक सौंदर्यशास्त्र विकसित करो. 'बदज़बान और शैतान में कोई ख़ास फ़र्क नहीं होता... सनद रहे. 'सवाल हैं कैसे' व्यंग्य में ब्लॉग की दुनिया के बारे में बताया गया है कि यदि मॉडरेटर की इच्छानुसार कमेंट नहीं है तो वह पोस्ट डालेगा ही नहीं और गाली-गलौच का तो सवाल ही नहीं उठता. 'क्या-क्या दिख रहा है' में वे व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि जो मदद करता है, वही फंसता है और ऐसे ही उच्च विचारों से एक 'चिथड़ा' संस्कृति का विकास होगा. ग्रामीण संस्कृति में कंप्यूटर क्रांति पर ग़ौर करते हुए कहते हैं, 'मुझे जो दिख रहा है, वह नयी सभ्यता का प्रसाद है.' प्रसाद को प्रमादग्रस्त लोग ही समस्या कह रहे हैं. 'महाकाव्यात्मक मीडिया' में मीडिया पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं, 'अमानगर्दन, दिल्ली के रामलीला मैदान में रामदेव का प्रहसन और अंत में आइटम गर्ल्स आदि को एक जैसे निष्ठा से 'कवर' करने वाले मीडिया को लेखक सहित मेरा भी प्रणाम. 'गरिमा बढ़ानी है' में कार्यक्रमों के उन अध्यक्षों व विभिन्न मंचों पर एक ही शिखर पुरुष की तुलना 'शिखर पान मसाला' से की है. उनके अनुसार गरिमामय व्यक्तित्व के आने से श्रोता व संयोजक दहल जाते हैं. भारत में दुर्वासाओं को सदा पूजा गया है. गरिमा बढ़ाते हैं अप्रत्याशितजी. कम शब्दों में कहा जाये तो गरिमा बढ़ाने के लिए तमाम लोग टहल रहे हैं. ठेके पर बढ़वाते हैं.

'इस साल क्या बोलेंगे' में रिटायर लोगों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है. इसमें फ़ेसबुक प्रमुख है. जब पत्नियां/पति सोने चले जाते हैं तो जागते पति/पत्नी फ़ेसबुक के प्रोफ़ाइल्स मैदान पर फर्राटा भर रहे होते हैं. लेखक ने अध्यक्ष की तुलना घंटा कहानी से की है, याने विषय कोई भी हो, लटक जायेंगे और अपनी ध्वनि से बजते रहेंगे. भारत में विदेशी विद्वानों का संदर्भ ज़रूरी है. प्रलेस, जलेस प्रसन्न और कलेस मिटते रहें. और फिर लेखक का गंभीर वाक्य कि कुछ व्यक्तित्वों को उकसा-उकसाकर अध्यक्ष बनाया जाता है, यह कहकर कि यू आर द बेस्ट. बेस्ट. 'कुछ नया होना है' मैं साहित्य में प्रमोशन प्रणाली पर व्यंग्य, 'न तू ज़मीं के लिए है, न आसमां के लिए,' टाइप का दांपत्य जीवन. 'एक समीक्षा : हज़ार अफ़साने' व्यंग्य में बड़ा ही ख़ूबसूरत वाक्य है. ... कलिकाल का कलहकाल. यह बिंब कभी नहीं पढ़ा था. मित्रता निभाने का तरीक़ा, 'मैं तो आपका पुराना प्रसंशक हूं. ज़रूर लिखूंगा. कायदन तो इस संग्रह पर गोष्ठी होनी चाहिए. 'बेसिकली का मामला' व्यंग्य में लेखक बेबाक भाषा में कहते हैं कि जो लोग बेसिकली हिंदी साहित्य में लुच्चे, लफंगे, लबार, लंपट हैं, वे साहित्य में भी बरसों बाद यही कर रहे हैं. चौराहों के बजाय कहानियों-कविताओं में आंख मार रहे हैं, सीटी बजा रहे हैं. मैं तो बेसिकली मजमा लगाकर अपना चूरन बेच रहा हूं.

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सुशील सिद्धार्थ के इस व्यंग्य संग्रह को पाठक अवश्य पढ़ें. एक नयी नज़र, नये बिंब और नई भाषा पढ़ने को मिलेगी. एक भी शब्द काटना मुश्किल था, पर वह भी करना था. सारे व्यंग्यों पर लिखना संभव नहीं था. लेकिन पाठक अवश्य पढ़ें.

एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स,
फिल्म-सिटी रोड,
मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७.
मो. : ९८३३९५९२१६

विराट मुक्तकों का संग्रह

देवमणि पांडेय

कुछ ज्वाला, कुछ जल (ग़ज़ल संग्रह) : **चंद्रसेन 'विराट'**
प्रकाशक : समांतर पब्लिकेशन, तराना, उज्जैन, (म. प्र.)
मूल्य : ३००/-

अपने नाम के अनुरूप कवि चंद्रसेन 'विराट' ने विराट लेखन किया है. उनका यह लेखन अपनी मात्रा और गुणवत्ता दोनों में बेजोड़ है. गीत, ग़ज़ल, दोहा और मुक्तक पर आधारित अब तक उनकी ४४ क़िताबें प्रकाशित हो चुकी हैं. उनकी रचनात्मक समृद्धि के फलस्वरूप उनके कृतित्व पर अब तक दो दर्ज़न से अधिक शोध हो चुके हैं और ये शोधार्थी पीएच.डी. की उपाधि हासिल कर चुके हैं.

कवि चंद्रसेन विराट की नयी काव्यकृति का नाम है — 'कुछ ज्वाला, कुछ जल' इसमें उन्होंने विविधता पूर्ण मुक्तकों को संग्रहीत किया है. ये पुस्तक गागर में सागर उक्ति को चरितार्थ करने में सक्षम है.

मुक्तक हिंदी काव्य साहित्य की ऐसी ख़ूबसूरत विधा है जो चार लाइनों में एक स्वतंत्र कविता होती है. किसी विशिष्ट भाव, विचार या अनुभूति की संवाहक यह विधा अपनी सरलता, सहजता और संप्रेषणीयता के चलते जनमानस में बेहद लोकप्रिय है. चार लाइनों की इस विधा में पहली दो लाइनों में भूमिका या प्रस्तावना होती है. तीसरी पंक्ति किसी रहस्य का संकेत करती है और चौथी पंक्ति में इस ख़ूबसूरती के साथ रहस्योद्घाटन होता है कि पाठक या श्रोता उछल पड़ता है. मुक्तक काव्य विधा के इसी राजमार्ग पर चलने वाले कवि हैं चंद्रसेन 'विराट'. उन्होंने परंपरा से चली आ रही इस काव्य तकनीक को रचनात्मक संबल बनाने के साथ ही उसके भाव जगत को समृद्ध बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है.

मिसाल के तौर पर उनके कुछ मुक्तक देखिए —

व्यक्ति को तौल ताल लेते हैं
हैसियत देखभाल लेते हैं,
लोग रिश्ते तभी बनाते जब,
ठीक से सब खंगाल लेते हैं.

X X X

स्वप्न को पाश पाश करती है
वो अपेक्षा का नाश करती है,
भव्यता दूर से भली लगती
पास से वो निराश करती है.

X X X

कविता यात्रा अनंत करता है
अपना यश दिगादिगंत करता है,
एक कवि प्रेम से शुरू करके
उच्च दर्शन में अंत करता है.

कवि चंद्रसेन 'विराट' के मुक्तकों की पुस्तकों का फलक विस्तृत है. ज़िंदगी के सुख-दुख, संघर्ष और सपनों को उनके यहां जगह मिली है. कुछ मुक्तकों में ज़िंदगी के दर्शन, चिंतन ओर अनुभवों का निचोड़ है. मसलन —

बोझ सिर से उतार देते हैं
जैसे लौटा उधार देते हैं,
लोग जीते कहां हैं बस ज्यों-त्यों,
ज़िंदगी को गुज़ार देते हैं.

X X X

एक मंज़िल तलक पहुंचता है
घूम फिरकर थक पहुंचता है,
ज़िंदगी का हरेक रस्ता तो अंत में
मौत तक पहुंचता है.

X X X

कुछ भी जीवन के है समान नहीं
फिर भी उसके हैं कद्रदान नहीं,
ख़ूब चीज़ें हैं मूल्यवान मगर
कुछ भी जीवन से मूल्यवान नहीं.

कुछ मुक्तकों में देश और समाज के सवाल और समस्याओं का अक्स है. कुछ में प्रेम, मिलन और वैराग्य भी है. क़िताब के नाम के अनुरूप इनमें ज्वाला भी है और जल भी है. इनमें रचनात्मकता की ऐसी ख़ुशबू है जो पाठकों को सहजता से अपने साथ जोड़ लेती है —

न सघन में हो अकेली की तरह
इक सुनसान हवेली की तरह,
ज़िंदगी कवि की हुआ करती है
नागफनियों में चमेली की तरह.

X X X

ढोके अपनी सलीब पहुंचे हैं
हैं वही ख़ुशनसीब पहुंचे हैं,
मेरे मुक़्तक वही हुए सार्थक
जो भी दिल के क़रीब पहुंच हैं.

कवि चंद्रसेन 'विराट' के मुक्तकों में न तो पांडित्य प्रदर्शन है और न बौद्धिकता का दबाव. बिल्कुल सरल, सुगम और बोलचाल की भाषा में लिखे गये इन मुक्तकों में सहज संप्रेषणीयता है जिसमें पढ़ने वाले को सुकून हासिल होता है. हिंदी काव्य जगत में छिट-पुट तौर पर कई कवियों के मुक्तक सामने आये. मगर ऐसे समृद्ध तौर पर इन्हें पेश करने का श्रेय विराट जी को जाता है. उम्मीद है कि विराट की ऐसी काव्य कृतियों से शोधार्थियों को सहूलियत होगी.

ए-२, हैदराबाद एस्टेट, नेपियन सी रोड,
मालाबार हिल, मुंबई-४०००३६.
मो.: ९८२१०-८२१२६

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१५"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१५ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०१५ के चारों अंक **"कथाबिंब"** की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७, ८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस अभिमत-पत्र का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर लिख कर भेज सकते हैं या ई-मेल द्वारा भेजें. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु. - एक), श्रेष्ठ कहानी (७५० रु. - दो) तथा उत्तम कहानी (५०० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें कथाबिंब की त्रैवार्षिक सदस्यता (२०० रु.) प्रदान की जायेगी. कथाबिंब ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. अंतिम पड़ाव पर- संतोष परिहार	
२. **पाखंडी** - पीयूष द्विवेदी	
३. **लीक** - मदन मोहन प्रसाद	
४. **पॉवर, पैसा और परिवार** - विक्रम सिंह	
५. **जीवन खेल तमाशा** - रविशंकर सिंह	
६. **अंतिम इच्छा** - सुरभि बेहेरा	
७. **गुलाबी लिफ़ाफ़ा - रूबी मोहंती**	
८. **धीरा मौसी** - डॉ. दीप्ति पटनायक	
९. **बाट जोहते हुए** - डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी	
१०. **मानवाधिकार** - डॉ. शैलजा 'श्यामा'	
११. **अतीत की शाख पर** - (स्व.) डॉ. गायत्री कमलेश्वर	
१२. **पहाड़ों की नर्म धूप** - नीरजा हेमेंद्र	
१३. **कोटर वाले कक्का** - बृज मोहन	
१४. **देवा की वसीयत** - सोहन वैष्णव	
१५. **भगदड़** - डॉ. अशोक गुजराती	
१६. **इंतज़ार -** डॉ. पुष्पा सक्सेना	
१७. **दबा हुआ सच** - डॉ. रमाकांत शर्मा	
१८. **वरदहस्त**- राजासिंह	
१९. **इकत्तीस का महीना** - डॉ. लता अग्रवाल	
२०. **बिछावन** - नीतू सुदीप्ति 'नित्या'	